पंचम अध्याय

'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' एवं 'मृगनयनी' उपन्यासों में नायिका परिकल्पना

गंगाधरराव की पत्नी लक्ष्मीबाई – 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई'

पंचम अध्याय : 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' एवं 'मृगनयनी' उपन्यासों में नायिका परिकल्पना

भारत में राष्ट्रीयता का जो बीज–वपन प्रायः उन्नीसवीं सदी के मध्य में हुआ, वह सन् 1857 के विप्लव में अंकुरित हुआ। इस विप्लव का स्वरूप चाहे जैसा रहा हो, और इसमें भाग लेने वाले नायकों एवं सैनिकों के तत्कालीन उद्देश्य चाहे जो भी रहे हों, किंतु इसमें संदेह नहीं कि इसकी अंतः प्रकृति राष्ट्रीय थी। अपने मूल रूप में हिन्दुओं और मुसलमानों का यह संगठित प्रयत्न विदेशियों को बाहर निकालने के लिए ही किया गया था। उन्नीसवीं सदी के मध्य में भारत जैसे देश में राष्ट्रीयता की जितनी समग्र भावना हो सकती थी, उतनी ही इस विद्रोह में दिखायी पड़ी। पर प्रश्न यह है कि इस विद्रोह की अभिव्यक्ति साहित्य में, इसकी प्रतिक्रिया कहाँ तक हुई। विप्लव का संबंध यद्यपि समस्त भारत से रहा तथापि हिन्दी भाषा–प्रांत का, इस दिशा में विशेष महत्व रहा है।

उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं के द्वारा विशेषकर नारी पात्रों के द्वारा राष्ट्रीय भावना का चित्रण मार्मिक ढंग से किया है। श्री वृंदावनलाल वर्मा ने भी विपुल ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना करके, नायिकाओं के द्वारा राष्ट्रीय भावना को और अधिक बढ़ावा दिया है। उसके साथ ही उग्र क्रांतिकारियों के असाधारण साहसपूर्ण आत्मबलिदानों ने सोई जाति में जागरण की स्फूर्ति और स्वत्व प्राप्ति की लालसा उत्पन्न की। पराधीन देश के भीतर आत्मगौरव की भावना, सांस्कृतिक आदर्शों के प्रति निष्ठा, आस्था तथा श्रद्धा उत्पन्न होती है। इससे अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम पैदा होता है और उसकी सर्वतोमुखी उन्नति के लिए प्रयास किया जाता है। इस दिशा में श्री वर्माजी का साहित्यिक प्रयास स्तुत्य रहा है।

1. पात्र योजना में नारी पात्र की अवधारणा एवं नायिका की महत्ता :

उपन्यास में पात्र योजना कथा के अनुसार की जाती है। इस पात्र योजना में नारी की प्रमुखता हो या पुरुष पात्रों की उनका परस्पर अनुपात क्या हो, यह कथानक के स्वरूप पर निर्भर करता है। पर प्रायः होता यही है कि उपन्यासों में पुरुष पात्रों के साथ नारी पात्रों को भी प्रमुख स्थान प्रदान किया जाता है।

हम यह स्वीकृत करते हैं कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसका जीवन समाज की सीमाओं में ही टूटता, बनता है। उसकी आस्थाएँ, मान्यताएँ और विचारधाराएँ सामाजिक परिवेश में ही जन्म लेती हैं, विकसित होती हैं या विच्छिन्न होकर बिखरती हैं। उसकी कल्पनाएँ समाज में ही सजीव हैं और उसके स्वप्नों तथा उसकी आकांक्षाओं की साकारता भी समाज में ही सिद्ध होती है अर्थात् मनुष्य और समाज एक दूसरे के पूरक हैं।

इस समाज में केवल पुरुष ही नहीं नारियाँ भी हैं। न तो अकेले पुरुष ही सामूहिक रूप से समाज की रचना कर सकते हैं और न मात्र नारियाँ ही समाज की रचना प्रक्रिया पूर्ण कर सकती हैं। दोनों से मिलकर ही समाज की रचना पूर्ण होती है। फिर उपन्यास तो हमारे मानवीय जीवन के प्रतिबिम्ब होते हैं। हम जो जीवन जीते हैं वह उपन्यासों के जीवन से कुछ विशेष भिन्न नहीं होता। हम जिस वातावरण में साँस लेते हैं, आगे बढ़ते हैं वही उपन्यासों का भी वातावरण होता है और इस जीवन तथा वातावरण में जितना भाग पुरुषों का होता है उतना ही नारियों का। इसीलिए जब उपन्यास की पात्र योजना निश्चित की जाती है, तो उसमें नारी पात्र को भी समान भाग दिया जाता है, यहाँ तक कि अनेक अवसरों पर केवल नारी पात्रों को ही प्रमुख रूप से लेकर उपन्यास की रचना की गई है। अतः पात्र योजना में नारी पात्रों का महत्वपूर्ण स्थान होता है, क्योंकि नारियाँ हमारे वास्तविक जीवन में भी पुरुष की पूर्णता सिद्ध कर जीवन को पूर्ण बनाती हैं। यह बात भिन्न है कि कथावस्तु इस प्रकार निर्वाचित की गई हो कि उसमें नारी पात्रों

की अधिक संख्या न संभव हो, पर नारी पात्रों की संभावना पूर्णतया अस्वीकृत करना अविवेकपूर्ण दुराग्रह के अतिरिक्त कुछ और न होगा।

नारी पात्रों की संख्या समाज की अवस्था पर भी निर्भर करती है। यदि समाज में नारियों की स्थिति सम्मानपूर्ण हुई, उन्हें सामाजिक और राजनीतिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो, तथा उनमें निरंतर प्रगतिशीलता हो, तो स्वभावतः नारियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, उस समाज में पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर चलेंगी; क्योंकि उन्हें अपने अधिकारों की रक्षा का बराबर ध्यान बना रहेगा। ऐसे समाज में साहित्य में भी नारियों को समान महत्व प्राप्त होता है। पर यदि दुर्भाग्य से नारियाँ प्रगतिशील न हुईं, समाज में उनकी स्थिति हेय और अपमानजनक हुई, उन्हें उनके वास्तविक अधिकार न प्राप्त हुए और राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन में उनका कोई भाग न हुआ, तो ऐसी स्थिति में नारी पात्रों को उतना प्रमुख स्थान न प्राप्त होगा जितना उसे मिलना चाहिए। वह ऐसे पुरुष पात्रों की कल्पना भले ही करता है, जो नारियों की स्थिति सुधारने के लिए और उन्हें विकासोन्मुख कर उनमें नवोन्मेष जागृत करने का प्रयास करे। अतः उपन्यास में नारी पात्रों की संख्या कितनी हो, उनका पुरुष पात्रों की तुलना में क्या अनुपात हो, यह प्रमुखतः उपन्यास की कथावस्तु पर निर्भर रहता है।

हम अपने मानव–सृष्टि के पूरे इतिहास को उठा कर अवलोकन करें तो यह तथ्य स्पष्ट होगा कि नारियाँ हमारे साथ सदैव किन्हीं न किन्हीं रूपों में रही हैं। ''वे हमसे निकृष्ट नहीं रही हैं, क्योंकि पुरुषों की तुलना में नारियाँ भिन्न मनोवैज्ञानिक विशेषताओं से सम्पन्न हैं। नारी का व्यक्तित्व उतना ही महान, महत्वपूर्ण होता है, जितना पुरुषों का।''★ *(हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, डॉ. सुरेश सिन्हा, अशोक प्रकाशन, पृ. 58)*

हमारे राजनीतिक तथा आर्थिक संघर्ष में नारियाँ किसी न किसी रूप में बराबर भाग लेती रहती हैं। सामाजिक रचना में भी उनका बराबर भाग होता है। हमारे अपने ही स्वाधीनता संग्राम में असंख्य नारियों ने बराबर महत्वपूर्ण भाग लिया है। महारानी लक्ष्मीबाई, श्रीमती सरोजिनी नायुडु आदि नारियाँ हमारी स्वाधीनता की नींव की पत्थर हैं। इसके पूर्व भी राजपूती–शान और आन–बान में असंख्य नारियों के बलिदान की महान प्रेरणादायक कहानियाँ सहज ही भुलाई नहीं जा सकती। यही नहीं पौराणिक आख्यानों में भी इस प्रकार के प्रसंग भरे पड़े हैं, जब हमारे सामाजिक और राजनीतिक संघर्ष में नारियाँ अपने उत्तरदायित्व को हृदयंगम कर महत्वपूर्ण भाग लेती रही हैं। सीता, उर्मिला, अहिल्या, सावित्री, राधा आदि ऐसी ही महिलाएँ थीं, जिन्होंने अपने अनुपम त्याग, सद्विचारों और पवित्रता से समाज के सम्मुख एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया और उसे एक नवीन दिशा प्रदान की। यह कहने का तात्पर्य इतना ही है कि हमारे जीवन संघर्ष में नारियाँ कभी पीछे नहीं रही हैं। दृष्टिकोण की विषमता के कारण कोई भले ही उन्हें घर की चार दिवारी में बंद रहने वाली निर्जीव गठरियाँ मात्र ही क्यों न समझ ले, इससे उनकी महत्ता न्यून नहीं हो जाती। मानवीय सृष्टि के आरंभ से ही नारी और पुरुष के परस्पर संबंध की अटूट श्रृंखला चली आ रही है। इस स्थिति में उपन्यासों की पात्र–योजना में उनकी संभावना कभी अस्वीकृत नहीं की जा सकती है।

वस्तुतः यथार्थ जीवन में नारियों के जितने रूप होते हैं, उपन्यासों की पात्र–योजना में कथावस्तु के स्वरूप एवं आवश्यकतानुसार स्थान प्रदान किया जाता है, और उनका चित्रण होता है। इस प्रकार यह तो स्पष्ट है कि पात्र–योजना में नारी पात्रों की अवतारणा एक अनिवार्य आवश्यकता होती हैं।

जिस प्रकार की कथावस्तु होगी, उसी प्रकार उनका रूप भी होगा और उसी अनुपात में उनकी संख्या भी होगी। उदाहरणार्थ वृंदावनलाल वर्मा के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' के नाम से ही स्पष्ट है कि उसमें लक्ष्मीबाई के शौर्य, उनकी वीरता और उनके अनुपम त्याग की कथा होगी। इसीलिए स्वाभाविक था कि उसमें यथेष्ट मात्रा में नारी–पात्रों की अवतारणा हो और सभी प्रमुख रूप से इस प्रकार से चित्रित की जाएँ, जिससे लक्ष्मीबाई के चरित्र को गौरव एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हो। सुंदर, मुंदर, काशीबाई, मोतीबाई, जूही, झलकारी आदि नारी पात्रों की सृष्टि इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए की गई हैं।

नारी पात्रों का वर्गीकरण प्रायः दो वर्गों में किया जाता है, नायिका अथवा सहनायिका तथा गौण पात्र। नायिका का कथानक में प्रमुख स्थान होता है। गौण पात्र नायिका के चरित्र को स्पष्ट करने, वातावरण को नवीन दिशा प्रदान करने या नवीन वातावरण की सृष्टि करने के लिए रखे जाते हैं।

1.1. नारी–पात्रों में नायिका :

नारी पात्रों में नायिका का प्रमुख स्थान होता है। वह सर्वप्रमुख नारी पात्र होती है। सामान्यतः उपन्यास के नायक की प्रेयसी अथवा पत्नी ही नायिका कहलाती है। पर यह प्रत्येक अवस्था में आवश्यक नहीं है, और न कोई अनिवार्य नियम ही। नायिका की भिन्न सत्ता हो सकती है और वह इस रूप में भी चित्रित की जा सकती है कि नायक से उसका कोई विशेष संबंध ही न हो। अधिकांश रूप में प्रत्येक उपन्यास में पुरुष पात्रों की भाँति नारी पात्रों की सृष्टि भी होती है। नारी पात्रों की कोई विशेष संख्या नहीं होती है। वे कथानक की आवश्यकतानुसार किसी भी संख्या में हो सकती हैं।

1.2. नायिका का अर्थ एवं परिभाषा :

नायिका शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ–नायक के साथ जुडा हुआ है। नायक संस्कृत शब्द है। नायक शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है। संस्कृत में "नी + अकः = नायकः याकाम, नायक, अकाम। नायक (पु.) नेता, सेनापति।

नारी का मनुष्य जीवन में जो महत्व है वह अक्षुण्ण है। नारी में प्रकृति सुलभ आकर्षण होता है, सौन्दर्य होता है। उसके अनेक रूप हैं – पत्नी, प्रेमिका, गृहिणी, सखी, माता आदि। पुरुष के जीवन की अपूर्णता नारी दूर करती है। मानव जीवन में जो स्थान नारी को है वही स्थान उसे साहित्य में प्राप्त होना स्वाभाविक है। साहित्यिक कृति में जब एक से अधिक नारी पात्र आते हैं तो नायिका की पहचान करना आसान कार्य होता है।

शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार नायिका का संबंध उपन्यास के फलागम के साथ जोड़ दिया है। उपन्यास के नारी पात्रों में कोई न कोई नारी ऐसी होती है जो कथानक का नेतृत्व करती हुई उसे अंतिम उद्देश्य तक ले जाती है। इसी आधार पर आगे डॉ. सिन्हा ने लिखा है – "पात्रों में नायिका का प्रमुख स्थान होता है। वह सर्वप्रथम नारी पात्र होती है। सामान्यतः उपन्यास के नायक की प्रेयसी अथवा पत्नी ही नायिका कहलाती है। उपन्यास का जो भी उद्देश्य होता है और फलागम की स्थिति इसी प्रमुख नारी पात्र को होती है। अर्थात् उपन्यास का अंत इसी प्रमुख नारी पात्र के आधार पर होता है। वह सुखद भी हो सकता है, दुखद भी, पर इस प्रमुख नारी पात्र को नायिका कहते हैं और उसकी परिभाषा संक्षिप्त में इस प्रकार दी जा सकती है – **नायिका का उपन्यास के कथानक के विकासक्रम में सर्वप्रमुख स्थान होता है और उपन्यास के फलागम की स्थिति उसे ही प्राप्त होती है।"★** *(हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, डॉ. सुरेश सिन्हा, अशोक प्रकाशन, पृ. 59, 60)*

'फल' के अधिकार का जो नियम नायक के लिए लगाया जाता है वही नियम यहाँ नायिका के लिए लगाया गया है। नायिका का स्थान साहित्यिक विधा में आने वाले सभी नारी पात्रों में प्रमुख होता है। इसी प्रमुख नारी पात्र के ईर्द–गिर्द कथानक का चक्र निर्मित होता है और कथानक में घटनाएँ इस प्रकार सगुम्फित की जाती हैं कि वह प्रमुख नारी पात्र उसका नेतृत्व करती प्रतीत होती है। वह कथानक के प्रत्येक मोड़ पर उपस्थित रहती है और पुरुष पात्रों में जो प्रधान पात्र होता है उसी के समान वह भी घटनाओं में घटित होने में प्रमुख भाग लेती है। **कथावस्तु का उद्देश्य, 'फल' का अधिकार, कथानक के अग्रसर होने की प्रक्रिया – ये नायिका विवेचन के मुख्य आधार हैं।**

1.3. भारतीय और पाश्चात्य साहित्य में नायिका की परिकल्पना :

भारतीय काव्यशास्त्र में नायिका लक्षण और नायिका भेद का विश्लेषण सूक्ष्म और विस्तार के साथ किया है। इस विश्लेषण का स्वरूप इस प्रकार है – ''भारतीय काव्यशास्त्र में 'नायिका' श्रृंगार रसालंबन भूता स्त्री'' है और 'साहित्य दर्पण' के अनुसार नायक के साथ संबंध की वैधावैधता, मनोदशा, अवस्था, सुख–कौशल, क्रीड़ा की मात्रा, मिलन तथा विरह के आधार पर उसके तीन सौ चौरासी भेदाभेद किये गये हैं।''★ *(मानविकी पारिभाषिक कोश : एनसायक्लोपीड़िया ऑफ ह्यूमेनिटीज़ लिटरेचर, साहित्य खंड, संपादक : डॉ. नगेन्द्र, पृ. 136)*

भारतीय भाषाओं के साहित्य का विकास जैसे–जैसे होता गया नायिका के स्वरूप में भी परिवर्तन होते गये। पाश्चात्य साहित्य में 'नायिका' का स्वतंत्र विवेचन नहीं है। त्रासदी का जो विस्तृत विवेचन है उसमें 'हीरो' को ही महत्व दिया गया है। नाटक तथा महाकाव्य में भी 'हीरो' को ही महत्व है। हीरो की योग्यता का उसकी स्वभाव विशेषताओं का विवरण ही अधिक मात्रा में हुआ है। हीरोइन (नायिका) का जो स्वरूप बताया गया है वह नायक के आनुषंगिक रूप में ही है।

1.4. नायिका का महत्व :

उपन्यास के नारी पात्रों में कोई न कोई नारी ऐसी होती है जो कथानक का नेतृत्व करती हुई उसे अंतिम उद्देश्य तक ले जाती प्रतीत होती है। उसका व्यक्तित्व उन सभी नारी पात्रों में अत्यधिक निखरा हुआ, प्रबल एवं आकर्षक होता है। वह पाठकों का ध्यान बरबस अपनी ओर आकर्षित करती चलती है और यह पाठकों को अनुभव होता है कि उपन्यासकार किसी विशेष दृष्टिकोण से उस नारी पात्र को प्रस्तुत कर रहा है। साथ ही वह उसके चरित्र–चित्रण की ओर, उसके व्यक्तित्व को निखारने, संवारने में विशेष रूप से प्रयत्नशील रहता है। जिस प्रकार किसी कमरे के गहन अंधकार में हीरे की चमक समाप्त नहीं हो जाती और उसका प्रकाश अपनी पूर्णता के साथ–जगमगाता रहता है, उसी भाँति नारी पात्रों के समूह में वह नारी अपना विशेष स्थान रखती है और उन सबसे भिन्न दिखाई पड़ती है। यही प्रमुख पात्र 'नायिका' है। कभी–कभी वह प्रधान पुरुष पात्र से भी अधिक महत्वपूर्ण भाग घटना क्रम में लेती है और अनेक दृष्टांत तो ऐसे हैं जिनमें बिना किसी प्रधान पुरुष पात्र के इसी एक प्रमुख नारी पात्र को लेकर उपन्यास के कथानक का ताना–बाना बुना गया है। उपन्यास का जो भी उद्देश्य होता है और फलागम की स्थिति इसी प्रमुख नारी पात्र को होती है। वह सुखद भी हो सकता है, दुःखद भी, पर इस प्रमुख नारी पात्र का प्रभाव उस अन्त पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

जीवन का स्वरूप नित्य परिवर्तित हो रहा है। नायिका कोई भी होगी, उसका हमारे मानवीय जीवन से संबंध होगा, अतएव उसके महत्व को किसी भी सीमा से निश्चित नहीं किया जा सकता। **नायिका की विशेषताएँ** इस प्रकार निर्धारित की जा सकती है :–

सभी नारी पात्रों में उसका प्रमुख स्थान होता है। अन्य नारी पात्रों की अपेक्षा नायिका का व्यक्तित्व अधिक सबल, निखरा हुआ और आकर्षक होगा। नायिकाओं की अनेक श्रेणियाँ होती हैं। प्रत्येक उपन्यासकार नारी को विभिन्न दृष्टिकोण से परखता है। कोई उन्हें वीरांगना के रूप में, जासूस के रूप में, माँ के रूप में, भोग की सामग्री के रूप में और उन्हें प्रेम की विरहाग्नि में जलती हुई नायिका के रूप में देखता है और चित्रित करता है। नायिका के निर्वाचन में तत्कालीन युग की परिस्थितियों, सामाजिक मर्यादाओं, नैतिक आदर्शों और लेखक की अपनी मान्यताओं तथा धारणाओं का अधिक प्रभाव पड़ता है। **सच तो यह है कि जिस प्रकार मानवीय जीवन में विविधता है, उसी भाँति उपन्यास की नायिकाओं में भी विविधता है। नारी जीवन के जितने भी रूप हो सकते हैं, उपन्यास की नायिकाएँ उन्हीं का प्रतिनिधित्व कर उपन्यास संसार से यथार्थ जीवन की नारियों की स्थिति की अभिव्यक्ति करती हैं; क्योंकि उपन्यास का, मानव जीवन के साथ निकट संबंध होता है, और वह मानवीय जीवन का कल्पित लेखा–जोखा होता है।**

2. नायिकाओं की परिकल्पना के उद्देश्य एवं आधुनिक काल में उसका स्वरूप :

नायिकाओं की परिकल्पना के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं :–

1. नारी के मर्मस्पर्शी चित्रण द्वारा करुणा एवं आकर्षण की उत्पत्ति।
2. नारी–चित्रण द्वारा जीवन की भाँति उपन्यास के अधूरेपन की पूर्णता।
3. नारी समस्या का प्रस्तुतीकरण।
4. नारी चित्रण द्वारा मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति में सहायता।
5. नारी के माध्यम से अपनी व्यक्तिगत कुंठाओं तथा वर्जनाओं का प्रदर्शन।

2.1. नारी के मर्मस्पर्शी चित्रण द्वारा करुणा एवं आकर्षण की उत्पत्ति :

नारी के प्रति पुरुष का आकर्षण आदिकाल से ही चला आ रहा है। इस आकर्षण के विभिन्न स्तर हो सकते हैं। कोई नारी को केवल प्रेमिका के रूप में माँ के रूप में, पत्नी या भगिनी के रूप में देखना चाहता है। पर एक बात निश्चित है कि दृष्टिभेद के जो भी रूप हों, नारी के प्रति पुरुष का स्वाभाविक आकर्षण होता है।

आज जबकि नैतिकता का अत्यंत पतन हो गया है, और सभी देशों से सभ्यता एवं संस्कृति खंडित होकर मर्यादाएँ बिखर रही हैं, वासना का प्रचंड उद्याम तीव्रता से वृद्धि–प्राप्त कर रहा है और लोगों की मनोवृत्तियाँ कुंठित होकर नारी के रूप, सौन्दर्य, उसके क्षेत्र, भृकुटियों, केशों तथा हाव–भाव पर अधिक सीमित होते जा रहे हैं, नैतिकता पर विचार करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। एक के लिए जो नैतिक है, दूसरे के लिए अनैतिक हो सकता है। वास्तव में धर्म के अनुमोदन से समाज की प्रचलित परंपराएँ नैतिकता के नियमों का रूप धारण कर लेती हैं। जब हम नैतिकता की बात करते हैं, तो यह निर्विवाद है कि वह वासनात्मक नैतिकता से संबंधित होती है। ''वासनात्मक नैतिकता स्वाभाविक मानवीय भावों को महत्व नहीं देती।''★ *(स्टडीज़ इन द साइकोलोजी ऑफ सेक्स, हैवलाक एलिस, छठी पोथी (1938), लंदन, पृ. 373)*

वासनात्मक अनैतिकता को नियंत्रित करने के लिए ही विवाह को अत्यंत आवश्यक माना गया है तथा विवाह के अतिरिक्त वासनात्मक संबंध अमान्य समझा जाता है। पर अमान्य होने के बावजूद भी उसका प्रचार निरंतर बढ़ता गया और यह धारणा दृढ़ता प्राप्त करने लगी कि एक नारी को पुरुष के प्रति हर प्रकार से

आत्मसमर्पण कर देना चाहिए। इसमें नारी की पसंद का कोई प्रश्न नहीं उठता। इस प्रचलित वासनात्मक नैतिकता को नारियों ने एक–पक्षीय तथा अपनी दृष्टि से पूर्णतया अनुपयोगी बताया।

इस प्रकार यह देखा जाता है कि समाज में काम–वासना की भावनाएँ अनियंत्रित होकर प्रसारित हो रही हैं, तथा नारी–पुरुष के स्वतंत्र और मनचाहे शारीरिक संबंध की भावनाएँ अंदर ही अंदर सुलग रही है, एक उबाल आ रहा है और ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे समाज का यह सारा रूप–विधान ही नष्ट हो जाएगा।

2.2.नारी–चित्रण द्वारा जीवन की भाँति उपन्यास के अधूरेपन की पूर्णता :

मानव समाज के मूल पृष्ठभूमि में नारी विद्यमान है। समाज, प्रेरणा, शक्ति, प्रेम एवं विश्वास आदि सभी कुछ नारी से ही प्राप्त करता है। समाज में नारी और पुरुष का अन्योन्याश्रित संबंध है, दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। पुरुष ने अकेले ही निर्माण की प्रक्रिया पूरी नहीं की है। सत्य स्थिति तो यह है कि पुरुष अराजकता उत्पन्न कर सभ्यता की लंबी दौड़ में वास्तविक संस्कृति को जन्म देने में सदैव असफल रहा है। इसके विपरीत नारियों ने पुरुषों के बराबर आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा दी है। वात्सल्य, स्नेह, कोमलता, दया इन्हीं के आधारों पर यह सृष्टि थमी हुई है, और यह नारियों के सर्वप्रधान गुण हैं। यही नहीं नारी वफा और त्याग का सजीव प्रतिबिम्ब है, जो अपने मूक त्याग से अपने अस्तित्व को पूर्णतया मिटाकर अपने पति की आत्मा का अंश बन जाती है। पुरुष अपना अस्तित्व इसलिए नहीं मिटाता कि उसमें इसकी सामर्थ्य नहीं है। यदि वह अपने को मिटायेगा तो वह शून्यता की स्थिति को पहुँच जाएगा वह किसी खोह में जा बैठेगा और सर्वात्मा में मिल जाने का स्वप्न देखेगा।

प्रायः सृष्टि के प्रारंभ से ही हम देखते आ रहे हैं कि मानव जब भी जीवन संघर्ष में असफल हुआ है, सभ्यता की दौड़ से पिछड़ा है, मानसिक अशांति से वह आक्रान्त हुआ है, और पीड़ा तथा अवसाद की लहरों पर डूबता उतराता रहा है, नारियों ने सदैव पुरुषों को सहायता प्रदान कर परिस्थिति परिवर्तित करने का प्रयत्न किया है। पुरुषों को अपना ममत्व, अपना आत्म–विश्वास तथा अपनी जीवन–संवेदना प्रदान कर वे सभ्यता के विकास का प्रयत्न करती हैं; क्योंकि पुरुष केवल अपने जीवन की व्यक्तिगत बातों के संबंध में ही सोचता है और वास्तविक मूल्यों की जीवन में अवहेलना करता है। पुरुषों का जीवन निर्दोष तथा श्रेष्ठ कभी नहीं स्वीकृत किया गया है। वास्तव में पुरुषों में थोड़ी पशुता होती है, जिसका निराकरण वह पूर्ण निश्चय करके भी नहीं कर पाता। वही पशुता ही उसे पुरुष का रूप प्रदान करती है। विकास–क्रम में वह नारी से कहीं पीछे है। जिस दिन वह विकास के चरमोत्कर्ष को स्पर्श कर लेगा, वह भी पूर्णतया नारी रूप हो जायेगा। पुरुष तेज प्रधान जीव है और अहंकार में यह समझकर कि वह ज्ञान का पुतला है, सीधा ईश्वर में लीन होने की कल्पना किया करता है। **स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान है, शक्ति संपन्न है, सहिष्णु है। नारी की स्थिति पुरुषों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है और वह सच्चे अर्थों में पुरुष को पूर्णता प्रदान करती है। अतः यह स्पष्ट है कि मानव जीवन की पूर्णता नारी को लेकर ही है। नारी के अभाव में समाज अपूर्ण है, मानव जीवन अपूर्ण है, यह सृष्टि मूल्यहीन है।**

2.3. नारी समस्या का प्रस्तुतीकरण :

भारत में ही नहीं विश्व के प्रायः प्रत्येक भाग में नारियों के सम्मुख उन्नीसवीं शताब्दी में अपनी हीनावस्था से बाहर निकलने की समस्या सर्वप्रथम थी। यद्यपि

यह समस्या आज भी किसी न किसी रूप में नारियों के सम्मुख उपस्थित है तो भी उसका पूर्ण समाधान नहीं हो पाया है। इस काल में नारियों में चेतना उत्पन्न करने, उनकी शिक्षा, प्रगति, आर्थिक स्वतंत्रता, राजनीतिक तथा सामाजिक अधिकार की प्राप्ति आदि कुछ ऐसी ही समस्याएँ थीं जिनकी ओर समाज का ध्यान या तो गया ही नहीं था, और गया भी था तो, उसे क्रियात्मक रूप प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयाँ थीं। समाज को हिचक थी, परंपराओं के प्रति मोह था, रूढ़ियों से उसका मार्ग पूर्णतया अवरुद्ध था तथा दृढ़भावनाओं का पूर्ण अभाव था। यही नहीं, स्वयं नारियों में भी अधिकांश में अपनी स्थिति में परिवर्तन के प्रति कोई उत्साह न था और न विशेष उत्सुकता ही थी। जो समाज सुधार आंदोलन प्रचलित भी थे, उन्हें इसी कारण उतने अंशों में सफलता नहीं प्राप्त हो रही थी, जितनी उन्हें प्राप्त होनी चाहिए थी। ऐसी अवस्था में साहित्य का उत्तरदायित्व गुरुतर हो गया था क्योंकि साहित्य समाज की समस्याओं को प्रस्तुत कर उनका समाधान खोज निकालने में सहायता प्रदान करता है। वास्तव में "जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक वृत्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य प्रेम न जागृत हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं।"★ *(कुछ विचार, प्रेमचन्द, (1940) बनारस, पृ. 7, 'साहित्य का उद्देश्य' नामक निबंध)।* साथ ही ऐसे साहित्य का न रचा जाना ही श्रेयस्कर होता है।

उपन्यासकारों ने नारियों की हीनावस्था की ओर अपनी विशेष रुचि प्रदर्शित की, तथा नारी की इन कठिनाइयों को प्रमुखता देते हुए ऐसी नायिकाओं की कल्पना करने की चेष्टा की, जिससे वे नारियों की इन समस्याओं को यथार्थवादी ढंग पर उपन्यास के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत कर सके तथा उसके बंद

नेत्र खोल उसे परिवर्तन की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दे सकें। उपन्यासकारों के इस प्रकार के नारी चित्रण का प्रमुख उद्देश्य नारी की हीनावस्था की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित कर नारियों के विकास के लिए एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार करना था, जिससे उनकी स्थिति में पर्याप्त मात्रा में सुधार हो सके।

उपन्यासकार साहित्य के महान उद्देश्य को अपने सम्मुख रखकर अपनी कृति के कथानक का संगुफन करता है, और वह संगुफन जब मानवीय जीवन की विभिन्न दिशाओं को एकत्रित करके किया जाता है तो उसमें नारी की समस्याओं को भी समान स्थान प्राप्त होता है, और उन्हीं का समाधान उपन्यासकार अपनी नायिकाओं अथवा अन्य नारी पात्रों की सहायता से करता है। वह थोड़ी–सी कुशलता अपनाकर नारी से संबंधित समस्याओं को उपस्थित कर नारियों को निश्चित दिशा सरलता से प्रदान कर सकता है। निम्नलिखित समस्याओं को नारी–चित्रण के माध्यम से प्रस्तुत कर उनका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न प्रायः सभी उपन्यासकार करते हैं।

1. अनमेल–विवाह
2. वेश्या–वृत्ति
3. विधवा–विवाह
4. नारी की आर्थिक स्वतंत्रता
5. पारिवारिक जीवन
6. प्रेम

भारत में नारियों को विवाह संबंधी वह स्वतंत्रता नहीं थी, जो विदेशों में अत्यंत साधारण बात थी। नारियों पर अनेक पारिवारिक नियंत्रण थे, जिसके कारण उन्हें अपने पतियों को चुनने का स्वयं कोई अधिकार न था। बाल–विवाह

के कारण अल्पावस्था में ही लड़कियों का विवाह कर दिया जाता था, जिससे बड़ी होने पर उन लड़कियों का जीवन असंतोष एवं आत्म–पीड़न का विचित्र सामंजस्य बन जाता था। अनमेल विवाह का एक और कारण भारत की शोचनीय आर्थिक अवस्था तथा भारतीय समाज में विवाह संबंधी दोषपूर्ण रूढ़ परंपराएँ थीं। विवाह में दहेज की समस्या इतनी भीषण रूप में उपस्थित हो गई थी कि विवाह वस्तुतः दो अनजाने व्यक्तियों का वैवाहिक बंधनों में बंधने का नहीं; अपितु एक व्यापारिक प्रक्रिया का रूप धारण कर चुका था। प्रायः लोग अपनी लड़कियों के लिए योग्य वर इसलिए नहीं खोज पाते थे, क्योंकि मुँहमाँगी दहेज देने की उनमें सामर्थ्य न होती थी। अनमेल–विवाह की इस भीषण समस्या से उपन्यास अछूते न रह सके और उपन्यासकारों ने इसी उद्देश्य से ऐसी नायिकाओं की परिकल्पना की, जो अनमेल विवाह का शिकार होती थीं और जिनका जीवन पूर्णतया असंतोषपूर्ण होता था। प्रेमचन्द का 'निर्मला' उपन्यास इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

अनमेल विवाह की समस्या के साथ ही नारी जीवन में विधवा की समस्या भी प्रमुख रूप में सदैव उपस्थित रही है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो विधवा की समस्या केवल आर्थिक ही नहीं है। यदि इस समस्या के मूल में केवल आर्थिक प्रश्न ही होता तो, समाज में दो–चार ऐसे धनी अवश्य निकल आते जो अपनी उदारता से इन्हें धन, दान स्वरूप दे डालते, जिससे एक कोष स्थापित करके उनकी समस्या हल की जा सकती। सत्य स्थिति तो यह है कि विधवा समस्या मात्र आर्थिक ही नहीं वैयक्तिक भी है। यदि कोई उदार व्यक्ति किसी विधवा नारी की शोचनीय स्थिति से द्रवित होकर उसके प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रदान करता है तथा वह उसे अपने यहाँ शरण देकर उसके खान–पान की व्यवस्था कर देता है तो स्वाभाविक है कि वह नारी की अपनी विवशता को

ध्यान में रखकर उस व्यक्ति के कृतज्ञता के भार से दब जायगी। इस स्थिति का लाभ उठाकर वही 'उदार व्यक्ति' जब अपनी कुत्सित भावना को शान्त करना चाहता है तो समस्या का एक भिन्न रूप हो जाता है। यदि उस व्यक्ति में निस्वार्थता की भावना हो, तब तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अधिकांश तो अपनी सहृदयता का बदला चाहते हैं, और परवश वह विधवा नारी उसी उदारता का ऋण चुकाने के लिए बाध्य होती है। अतः विधवाश्रमों की स्थापना से अधिक श्रेयस्कर समाधान पुनर्विवाह ही हो सकता है।

उपन्यासकारों का ध्यान इस गंभीर समस्या की ओर भी गया, और अपने उत्तरदायित्व को समझकर उन्होंने ऐसी नायिकाओं की कल्पना की, जिससे विधवा समस्या को सत्यार्थों में समाज के सम्मुख उपस्थित कर सके तथा उसका समाधान खोज निकालने के लिए लोगों को प्रवृत्त कर सके। उपन्यासकारों का प्रमुख उद्देश्य ऐसी नायिकाओं की कल्पना कर केवल समाज को ही आकर्षित करना नहीं था, वरन् स्वयं विधवा नारियों को भी अपनी गहराई से सोचने के लिए तथा आत्महत्या आदि कायरतापूर्ण मार्ग न अपनाकर अपनी उन हीनावस्था में भी जीवनगत गरिमा स्थापित करने की प्रेरणा देने का था।

नारी जीवन में वेश्या समस्या भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। आर्थिक विषमताओं तथा समाज की रूढ़ परंपराओं के कारण नारियों के लिए वेश्यावृत्ति अपनाना एक प्रकार से आवश्यक–सा हो जाता था। इनके निराकरण का एक मात्र उपाय था कि वे आत्महत्या कर लें। वेश्यावृत्ति के अनेक कारण समाज में प्रचलित थे। प्राचीन काल में प्रेम–संबंधी स्वतंत्रता न प्राप्त थी। जब दो व्यक्तियों में प्रेम–संबंध स्थापित हो जाता था, और समाज में वह रहस्य न रहकर चर्चा का

विषय बन जाता था तो समाज पुरुष को तो क्षमा कर देता था, पर नारी को वह अधिकार न प्राप्त था। अतः मृत्यु अथवा वेश्यावृत्ति के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग उसके सम्मुख नहीं रह जाता था। उपन्यासकारों ने इस संबंध में अपना उत्तरदायित्व समझ ऐसी नायिकाओं की कल्पना केवल इसी उद्देश्य से की, जिससे वे वेश्या–समस्या का सर्वांग चित्र समाज के सम्मुख उपस्थित कर सकें। इन उपन्यासकारों का ऐसी नायिकाओं की कल्पना के पीछे एक उद्देश्य यह भी था, वे समाज के युवकों में साहस तथा उत्साह की भावना उत्पन्न कर इन वेश्याओं के प्रति करुणा उत्पन्न करना चाहते थे, जिससे वे वेश्याओं से विवाह कर सकें और यह विवाह समस्या किसी न किसी रूप में सुलझ सके।

पारिवारिक जीवन तथा नारी–पुरुष के प्रेम को सफलतपूर्वक चित्रित करने के लिए भी नायिकाओं की कल्पना की जाती है। पर इन सब समस्याओं के मूल में नारी की आर्थिक–समस्या ही सर्वप्रमुख है। यदि समाज के रूप–विधान में इस प्रकार का परिवर्तन हो जाए, जिसमें नारी केवल पुरुषा को ही आश्रित न हो स्वयं भी स्वावलंबी हो सके तथा अपना स्वतंत्र जीविकोपार्जन करने की स्थिति में आ जाए तो अनेक नारी समस्याओं का सरलतापूर्वक समाधान हो सकता है। यदि नारियाँ आर्थिक दृष्टि से संपन्न हो जाएँ तो वेश्यावृत्ति की ओर स्वभावतः वह अपना कदम न बढ़ाना चाहेंगी। अतः नारियों की आर्थिक समस्या भी अत्यन्त चिन्ताजनक रूप में समाज के सम्मुख उपस्थित रही है, जिससे अन्य लोगों के अतिरिक्त उपन्यासकारों का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित किया। उपन्यासकारों ने इस समस्या का समाधान अपने ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने कुछ नायिकाओं की कल्पना इसी उद्देश्य से की है, जिससे वे नारियों की आर्थिक समस्या का चित्रण कर सके और उन्हें कोई निश्चित मार्ग प्रस्तुत कर सकें।

2.4. नारी चित्रण द्वारा मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति में सहायता :

आधुनिक युग में उपन्यासकारों को मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति ने विशेष रूप से प्रभावित किया। इन अवचेतन की कार्य प्रक्रियाओं के अध्ययन को मनोविश्लेषण के माध्यम से प्रकट करने का प्रयत्न उपन्यासकारों ने किया है। मनोविश्लेषण की इस प्रवृत्ति में उपन्यासकारों को नारी पात्रों से विशेष सहायता प्राप्त होती है, इसलिए ये अनेक ऐसी ही नायिकाओं का चित्रण करते हैं। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि नारी पुरुष में सर्वाधिक प्रधान समस्या कामवासना की है। पर समाज यौन वासना की स्वतंत्रता की अनुमति नहीं देता, तथा नारी और पुरुष दोनों को अपनी कामवासना संबंधी भावनाओं का दमन करना पड़ता है। पर असल में वे इन भावनाओं का दमन कर सकने में असफल होते हैं। ये भावनाएँ दमित नहीं होती अपितु उसी अवचेतन मन में एकत्रित होती रहती हैं। अवचेतन मन की दमित–शमित इन्हीं भावनाओं के विश्लेषण के लिए उपन्यासकार पुरुष पात्रों के साथ नारी पात्रों की कल्पना करता है तथा नारी–पुरुष के स्वाभाविक आकर्षण के माध्यम से वह अपना अध्ययन प्रस्तुत करता है। दोनों पर समाज का कठोर नियंत्रण होता है। परिणामस्वरूप नारी–पुरुष दोनों में घुटन उत्पन्न हो जाती है, तथा आत्मपीड़न में ही वे अपने जीवन में अग्रसर होने लगते हैं। इस प्रकार नायिकाओं की कल्पना का एक उद्देश्य यह भी होता है कि उससे मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति में सहायता प्राप्त होती है।

2.5. नारी के माध्यम से अपनी व्यक्तिगत कुंठाओं तथा वर्जनाओं का प्रदर्शन:

फ्रायड के अनुसार हमारे जीवन की अतृप्त वासनाएँ, कामनाएँ तथा अपूर्ण इच्छाएँ अवचेतन मन में एकत्रित होती रहती हैं हम उनका पूर्ण रूप से दमन कर

सकने में सफल नहीं हो पाते हैं। यह अवचेतन मन हमारे चेतन मन से अधिक शक्तिशाली होता है, तथा हमारे जीवन की गति को नियंत्रित करता है। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसके जीवन में कोई इच्छा न हो, उसके लिए सपने न हों और उसने अपनी इंद्रियों पर पूर्ण रूप से निग्रह कर लिया हो। हर व्यक्ति इच्छाओं का दास होता है, पर उसका अन्तरमन जो चाहता है, वह सभी पूर्ण नहीं हो जाता। कुछ को उसे सामाजिक लज्जा एवं नैतिकता के भय से नियंत्रित करना पड़ता है, कुछ को अपनी विवश्ताओं के कारण दमित करना पड़ता है। यद्यपि व्यक्ति समझता है कि वह इन इच्छाओं का दमन कर देता है, पर वास्तव में यह सत्य नहीं है। वस्तुस्थिति तो यह है कि अवचेतन मन में इस दमित–शमित भावनाओं को स्थान मिलता रहता है।

उपन्यासकार भी वही जीवन जीता है, जो दूसरा व्यक्ति जीता है। उसकी भी लगभग वही इच्छाएँ होती हैं, जो उसी स्तर पर दूसरे व्यक्तियों की होती हैं। उसके मन में भी वासना का भाव होता है। उसका पूर्ण नियंत्रण वह नहीं कर पाता। चूँकि वह बुद्धिजीवी होता है, प्रखर चेतना संपन्न होता है, इसलिए साधारण व्यक्तियों की भाँति उसका व्यक्तित्व खंडित नहीं होने पाता। अधिकांश उपन्यासकार अपने को नैतिकता की निम्नतम सीमा तक नहीं जाने देते और पूर्ण नैतिकता, संस्कृति तथा सभ्यता के विकास का चोला पहनकर अपने अवचेतन मन की शक्ति से नियंत्रित हो अपनी सारी प्रवृत्तियों को उपन्यास में नायिका के माध्यम से प्रकट करते हैं। इससे उनकी आत्मा, साथ ही उनके अवचेतन मन को भी तुष्टि प्राप्त होती है। इन उपन्यासकारों का नायिका की परिकल्पना का एक–मात्र उद्देश्य यही होता है कि अपने अवचेतन मन की सारी दमित–शमित भावनाओं, मन की वासना, कुण्ठाग्रस्त वर्जनाओं आदि को प्रकट कर सके।

उपन्यासों में नारी चित्रण राजनीतिक उद्देश्य से भी किया जाता है। प्रायः उपन्यासकार किसी विशेष दर्शन या सिद्धांत में विश्वास करते हैं, तथा उन्हीं मतों का प्रचार अपने उपन्यासों के माध्यम से करने का प्रयत्न करते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति में नारी पात्र उतने ही सहायक होते हैं, जितने पुरुष पात्र। इसीलिए प्रायः उपन्यासों में नायिकाओं को प्रचलित मान्यताओं से भिन्न किसी विशेष दिशा का पालन करते देखा जाता है।

2.6. आधुनिक काल में नायिका का स्वरूप :

मानव समाज में नारी का महत्व और उत्तरदायित्व बहुरूपी है। परंतु उसकी ओर देखने का, पुरुष जाति का दृष्टिकोण स्वार्थी और सदोष रहा है। प्राचीन साहित्य में स्त्री को जो स्थान है वह पुरुष की अनुगामिनी के रूप में है। साहित्यिक विधाओं की कथावस्तुओं में 'नायिका' संघर्ष का कारण बनी है। परंतु उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व के विचार का अभाव है। नायक या प्रतिनायक नायिका को अपने सुख का साधन मानकर ही उसकी प्राप्ति के लिए संघर्षरत रहे हैं।

भारतीय साहित्य में 'नायिका' का वर्णन उसके भेदोपभेदों का विस्तार, श्रृंगार रस के संदर्भ में ही हुआ है। नायिका के इस स्वरूप के अवशेष आधुनिक साहित्य में भी मिलते हैं। नायिका के कारण शक्तिशाली राजाओं में युद्ध हुए, तख्त पलट गये पर यह नायिका पर्दे में तथा अंतःपुर में ही रही। उस नारी हृदय में उठनेवाले तूफान को कोई नहीं देख सका। उसे कामवासना का शिकार बनाया गया परन्तु उसकी इच्छा, आकाँक्षाओं का ख्याल नहीं रखा गया, उन्हें जानने–परखने की आवश्यकता किसी को प्रतीत नहीं हुई।

पुरुष ने अपने अधिकार से स्त्री–पुरुष संबंधी तथा समाज धारणा के नियम अपने ही हित में बनाये। शील, नैतिकता, चारित्र्य के सभी बंधन नारी पर डाल दिये। तरह–तरह के बंधनों में नारी को ऐसे जकड़ दिया कि वह युगों–युगों में आत्मोद्धार की बात ही न सोच सकी। पुरुष नारी का शोषक बनकर रहा। उसने नारी को अंतःपुर में बंद किया और खुद निरंकुश, अनिर्बन्ध रहा। भारत के प्राचीन ग्रंथों में नारी को ऊँचा स्थान दिया गया है। **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।'** परंतु व्यवहार में नारी अपेक्षित ही रही है।

बीसवीं सदी में शिक्षा का प्रचार बढ़ने लगा। सामाजिक, राजनीतिक जागृति का पर्व शुरू हुआ। धार्मिक आंदोलन, संस्कृति के कारण सामाजिक परिवेश बदलने लगा। साहित्य पर भी इन सब बातों का असर होता रहा। आधुनिक साहित्य में नायिका को 'व्यक्तित्व' मिलता जा रहा है। समय परिवर्तन के साथ उसके व्यक्तित्व के आयाम बदलते जा रहे हैं। नायिका का आत्मसम्मान जागृत हो गया है। अपने व्यक्तित्व के कुचले जाने की प्रतिक्रिया में वह विद्रोही बनती जा रही है। वह अपने व्यक्तित्व की अलग इकाई की खोज में व्यग्र है। यह आधुनिक नायिका पुरुष की दासी बनकर अपने व्यक्तित्व का विलयन नहीं सह सकती। केवल भोग–विलास की वस्तु बनकर रहना उसे मंजूर नहीं है।

आधुनिक मनोविज्ञान तथा जैविक विज्ञान ने नया दृष्टिकोण दिया है। नारी अबला नहीं है। वह पुरुष से किसी तरह कम नहीं है। उसका व्यक्तित्व पुरुष की तरह ही श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण है। भारतीय राजनीति में नारी वर्ग का योगदान उल्लेखनीय रहा है। विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक आंदोलन, स्वतंत्रता संग्राम आदि के साथ भारतीय नारी प्रतिबद्ध रही है। नारी शक्ति को पहचानकर राष्ट्र कार्य में सहयोग प्राप्त करने का महान कार्य स्वामी विवेकानन्द और महात्मा

गाँधीजी ने किया। नारी का सामाजिक कार्य क्षेत्रों में आगमन निश्चित रूप से क्रांतिकारी बात थी। इसी नयी जागृति का परिणाम आधुनिककालीन उपन्यासों के नारी चित्रण पर पड़ा।

आधुनिक काल की नायिका परम्परादत्त गुलामी की श्रृंखलाओं में बंद रहने का विरोध करने के लिए कटिबद्ध है। कहीं पर उसका संघर्ष सफल होता है तो कहीं पर असफल। आधुनिक नायिका की उन्मुक्ता, स्वच्छंदता उसके विद्रोह का ही परिपाक है। अपने व्यक्तित्व विकास के लिए उसे वैयक्तिक मान्यताओं का सृजन करना है और इस कार्य में वह व्यग्र है। नारी अपने व्यक्तिगत जीवन में अपनी इच्छानुसार परिवर्तन करने की शक्ति रखती है। सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में आधुनिक नारियों ने अपनी शक्ति का परिचय दिया है। आधुनिक नायिका ऐसी ही नारियों का प्रतिनिधित्व करती है।

आधुनिक काल की नायिकाओं को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया है :–

1. प्रेमिकाएँ–सफल प्रेमिकाएँ, असफल प्रेमिकाएँ।
2. गृहस्थ नायिकाएँ–पतिपरायणा और गृहस्थ जीवन में असफल नायिकाएँ।
3. अन्य नायिकाएँ – विधवाएँ, वेश्याएँ, नर्तकी, नायिकाएँ।
4. फैशनपरस्त विलासिनी नायिकाएँ, वीरांगनाएँ, कृषक बालाएँ आदि।

इसी वर्गीकरण में साहित्यिक विधाओं में वर्णित प्रायः सभी नायिकाओं का समावेश होता है। वृंदावनलाल वर्मा कृत 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' एवं 'मृगनयनी' उपन्यासों की नायिकाएँ वीरांगनाएँ हैं। दोनों ही महान स्त्री के सभी गुणों से परिपूर्ण हैं। दोनों ही नायिकाएँ वीरता, विनम्रता, जिज्ञासुक, धैर्यशाली, दृढ़चित्त, सच्ची सहेली आदि महान व उत्तम गुणों से उपन्यास में आती हैं।

3. वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में नायिका परिकल्पना :

वृंदावनलाल वर्मा वास्तविक ऐतिहासिक उपन्यास–प्रणेता के गौरव के अधिकारी हैं क्योंकि इनकी रचनाओं में इतिहास रोमांस और कल्पना के सुंदर समन्वय प्राप्त हैं। वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों के विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्माजी के हाथों ऐतिहासिक उपन्यास को अपना सम्यक् स्वरूप प्राप्त हुआ। आपने उसे इतिहास और कल्पना के सुंदर समन्वय से मंडित कर एक ओर उपन्यास कला का आदर्श प्रतिष्ठित किया है तो दूसरी ओर इसे लोक रुचि और आकर्षक का विषय बनाया।

वर्तमान समाज की समस्याओं और क्षतियों का समाधान सुझाने के लिए उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास को एक योग्य माध्यम के रूप में स्वीकार किया। इनके द्वारा एक ओर समाज में भारतीय गौरव के चित्रण के माध्यम से उसके प्रस्तुत पौरुष को जागृत करने का प्रयत्न किया गया है तो दूसरी ओर समाज की विधातक रूढ़ियों के उन्मूलन की ओर संकेत। ''गढ़ कुण्डार'' और ''मृगनयनी'' में इसके उदाहरण देखे जा सकते हैं।

वर्माजी का उपन्यास यद्यपि मध्ययुगीन ऐतिहासिक महापुरुषों के आधार के रूप में ग्रहण कर लिखे गये हैं, किंतु उनके विषय वस्तु और वातावरण के निरूपण में उनका जनवादी दृष्टिकोण सर्वत्र परिलक्षित होता है। 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई', 'मृगनयनी', 'मुसाहिबजू', 'भुवन विक्रम' आदि कृतियों में जन–साधारण के महत्व की प्रतिष्ठा अक्षुण्य रूप से विद्यमान है। जनता की शक्ति में उन्हें अगाध विश्वास है और वह यथास्थान अभिव्यक्ति पा लेती है।

नारी–स्वातंत्र्य वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों की एक अनन्य विशेषता है। इनके उपन्यासों में नारी–पात्रों की सृष्टि भव्य और उदात्त है। 'झाँसी की

रानी लक्ष्मीबाई', 'मृगनयनी', 'लाखी' और 'कचनार' इनके अमर पात्र हैं, जो देश और कर्तव्य के लिए साहस, शौर्य, त्याग, तपस्या तथा आत्मोसर्ग करने के लिए सदैव अविस्मरणीय होंगे।

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों की एक मुख्य विशिष्टता ऐतिहासिक वातावरण की सप्राण अभिव्यक्ति है। यह अभिव्यक्ति इतनी सशक्त और कल्पनात्मक है कि उसका मूर्त स्वरूप पाठक के मन पर अंकित हो उठता है। वर्माजी की इस सफलता का रहस्य है – शिकारी वेश में उनका समस्त बुंदेलखंड का पर्यटन और सन्निकटस्थ अवलोकन।

वर्माजी की कृतियों में 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है तो दूसरी ओर 'मृगनयनी', 'गढ़ कुण्डार' आदि समन्वयात्मक, ऐतिहासिक उपन्यास है। उनका 'विराटा की पद्मिनी' वातावरण प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास है और 'भुवन विक्रम' कल्पना प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास है। वर्माजी के इन उपन्यासों की सफलता का चरम रहस्य है उनका अपने उपन्यासों में नियोजित रोमांस। वर्माजी की कृतियाँ पाठकों में आद्यंत जिज्ञासा, आकर्षण आदि भाव जगाती हैं। उनके इन उपन्यासों में इतिहास, कल्पना और रोमांस के इस संयोजन ने ही उन्हें श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार के गौरव का यश प्रदान किया है। 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई', 'मृगनयनी', 'कचनार', 'विराटा की पद्मिनी' उनकी सर्वाधिक लोकप्रिय रचनाएँ हैं। इस युग के परवर्ती ऐतिहासिक उपन्यासकार भी इन्हीं के ऐतिहासिक उपन्यास के स्वरूप को आदर्श मानकर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करते रहे हैं।

नारियों के प्रति वर्माजी का दृष्टिकोण पवित्र और आस्थावान है। उन्हें नारियों से प्रेरणा शक्ति प्राप्ति का विश्वास है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई,

मृगनयनी, कचनार, अहिल्याबाई, अवंतीबाई, महारानी दुर्गावती, गौरी आदि ऐतिहासिक उपन्यास की नायिकाएँ हैं जो जीवन को एक संदेश देती हैं और कर्तव्य–अकर्तव्य का बोध करती हुई प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान करती हैं।

मृगनयनी मध्ययुग की एक आश्चर्यजनक वीर दृढ़ तथा शक्तिशाली नारी है। वह हृदय से कोमल और कर्तव्य बुद्धि से अनुशासित है। कचनार भावनामयी है फिर भी उसमें मृगनयनी के समान दृढ़ता है परंतु उसके समान शौर्य नहीं। कचनार और मृगनयनी दोनों स्पष्ट, निर्भीक और कठिन हैं। परंतु कचनार, कचनार के फूल से ही सुकुमार तथा भावप्रवण है और मृगनयनी एक ही तीर से अपने भैंस को मार गिरानेवाली शक्तिशाली बाला।

अहिल्याबाई इनसे अलग विचार विलक्षण नायिका है, करुणा और दया की साकार मूर्ति। वे मानवी थीं किंतु जनता उन्हें देवी के समान पूजती थी। वर्माजी ने लिखा है – ''अपने जीवन–काल में ही इन्हें जनता देवी समझने और कहने लगी थी। इतना बड़ा व्यक्तित्व जनता ने अपनी आँखों देखा ही कहाँ था?''★ *(अहिल्याबाई, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, परिचय)* वे आदर्शवादी हैं, उदारचेता हैं और अत्यंत भावुक तथा कोमल हृदय की, परंतु काम पड़ने पर वे युद्धक्षेत्र से पलायन करने वाली नहीं।

रामगढ़ की रानी अवंतीबाई एवं महारानी दुर्गावती दोनों में राष्ट्र एवं धर्म के लिए प्राण देने की अपूर्व क्षमता है। अवंतीबाई, अहिल्याबाई की तरह उदार एवं गरीबों पर रहम करनेवाली है। परंतु देश प्रेम की जितनी आग अवंतीबाई के हृदय में भड़कती है, उतनी अहिल्याबाई के नहीं। अहिल्याबाई धर्म प्रचार के लिए मंदिरों–घाटों का निर्माण करने वाली है तो अवंतीबाई धर्म के लिए प्राण उत्सर्ग करने वाली। उन्होंने एक स्थल पर कहा है – ''जब तक हमारे तन में रक्त की

एक बूँद भी है, तब तक कोई हमारा धर्म नष्ट नहीं कर सकेगा।''★ *(रामगढ़ की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन प्रा. लि. पृ. 26)*

महारानी दुर्गावती अवंतीबाई की तरह वीर एवं पराक्रमी है। ''वे बाणविद्या और तलवारबाजी में अत्यंत निपुण हैं। कुशाग्र बुद्धि के साथ–साथ राजनीति में भी उनका अपूर्व उत्साह दिखाई पड़ता है।''★★ *(महारानी दुर्गावती, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन प्रा. लिमिटेड, पृ. 30)* वे एक कुशल शासिका और निपुण युद्ध संचालिका भी हैं। वे हिमालय के समान अड़िग बादलों के समान गंभीर और सागर के समान विशाल हृदयवाली हैं। ''वर्माजी के नारी–पात्र आधुनिक बुद्धिवादी लेखकों की नारी के समान बौद्धिक द्वंद्व में फँसी, उलझी तथा मानसिक गुत्थियों की शिकार नहीं हैं और न उनके नारी–पात्र प्रवृत्तियों के दास ही हैं बल्कि प्रवृत्तियों पर शासन करने वाले हैं। सर्वत्र ही एक विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण देखने को मिलता है और जो अपने में पूर्ण तथा मानसिक कुण्ठाओं से परे हैं।''★★★ *(श्री वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में नायिका परिकल्पना, डॉ. पी.के. इंदिराबाई, जयभारती प्रकाशन, पृ. 82)*

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों की नायिकाओं में त्याग, संयम, निष्ठा, दृढ़ता, स्वाभिमान, देशप्रेम आदि महान मानवी गुणों का समावेश देखा जा सकता है। उनके उपन्यास की नायिकाओं को चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है – प्रेम प्रधान, वीरता प्रधान, गृहस्थ और मिश्रित। प्रेम प्रधान उपन्यासों में प्रेम की विभिन्न स्थितियाँ देखने को मिलती हैं। मानव–स्वभाव के अनुसार प्रेम के स्वरूप में भी अंतर होता है। कोई स्वभाव से संकोची होता है तो उसके प्रेम की सीमा भी कुछ हद तक संकुचित ही होती है। कोई प्रेम में हर कठिनाइयों का सामना करता हुआ अपने अंतिम उद्देश्य में हर स्थिति में पहुँचने का प्रयत्न करता है। किसी–किसी के प्रेम में त्याग की प्रधानता रहती है। ''विराटा की पद्मिनी'

की कुमुद, 'कचनार' की कचनार, 'गढ़ कुण्डार' की तारा आदि उपन्यास की नायिकाएँ प्रेम प्रधान नायिकाओं की कोटि में आती हैं।

वीरता प्रधान उपन्यासों में 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई', महारानी दुर्गावती, 'रामगढ़ की रानी' आदि मुख्य हैं। प्रायः नारियाँ अपने जीवन में महान उद्देश्य निमित्त कर लेती थीं और उसके लिए अपने जीवन का बलिदान तक दे देती थीं। देश के गौरव व स्वाधीनता के समक्ष सर्वाधिक प्रमुख समस्या स्वाधीनता प्राप्ति की थी और पुरुषों के समान नारियाँ भी उसमें अपना महत्वपूर्ण योग प्रदान कर रही थीं। उसमें भी पुरुषों के समान अनुपम संगठन शक्ति, धैर्य एवं अपूर्व साहस होता था, युद्धों की कुशल संचालन की भावना होती थी और ऐसी नारियों में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का सर्वप्रमुख स्थान है।

भारतीय नारियों के लिए परिवार का बड़ा ही महत्व है। विवाह के पूर्व अपने माता–पिता के संरक्षण में रहती थी और विवाहोपरांत पति के घर में इस आशा से भेजी जाती थी कि वहाँ जाकर नवीन गृहस्थी का संचालन करेंगी। हर लड़की को प्रारंभ से ऐसी शिक्षा देनी चाहिए। जिससे कि वह अपने जीवन में सफल गृहिणी बन सके। 'मुसाहिबजू' उपन्यास का चरखारी वाली और माधव जी सिंधिया की गन्ना बेगम गृहस्थ नायिकाओं की कोटि में आती हैं।

उपन्यास में प्रेमिकाओं, गृहिणियों और वीरतापूर्ण नारियों को छोड़कर अन्य ऐसी नारियाँ हैं जिनका समाज में अपना प्रमुख अस्तित्व हैं, कम चित्रित हुई हैं और उपन्यासों में उन्हें महत्व नहीं मिला है। वर्माजी के उपन्यास 'टूटे काँटे' की नूरबाई मिश्रित भावों की मुख्य नायिका है। इस तरह श्री वृंदावनलाल वर्मा जी ने अपने उपन्यासों की रचना व्यापक फलक को लेकर किया है। उन्होंने विभिन्न प्रकार की नायिकाओं का चित्रण करते हुए समाज की रूपिणी नारियों की स्थितिगतियों का सजीव चित्र अंकित किया है।

4. राष्ट्रीयता का स्वरूप एवं तत्व :

मनुष्य का, अपने देश की उन्नति के लिए सतत प्रयत्न करना और उसकी रक्षा के लिए अपना तन–मन–धन को अर्पित करना राष्ट्रीयता कहलाता है। राष्ट्रीयता का अर्थ बहुत व्यापक है। उसे समझने के लिए पहले उसके स्वरूप एवं तत्वों पर विचार करना आवश्यक है।

'राष्ट्र' अँग्रेज़ी शब्द 'नेशन' का हिन्दी पर्याय है। किसी जन समुदाय को राष्ट्र की संज्ञा तब ही दी जा सकती है, जबकि उसमें नस्ल, धर्म, भाषा, भूमि, संस्कृति आदि की एकता हो, उसके लोग आपस में सहानुभूति रखते हो, एक ही शासन में रहें और वह शासन उन्हीं में से चुने हुए व्यक्तियों का हो। मानक हिन्दी कोश के अनुसार किसी निश्चित और विशिष्ट क्षेत्र में रहनेवाले लोग जिनकी एक भाषा, एक से रीति–रिवाज तथा एक सी विचारधारा होती है, एक राष्ट्र के अन्तर्गत आते हैं। ''डॉ. रामविलास शर्मा ने राष्ट्र का संबंध जन से माना है। उनका आशय यह है कि अनेक जनों से बने हुए संघ को हम गण कहें तो जन के बाद गण, गण से लघु जाति और लघु जाति से महाजाति का विकास क्रम निश्चित होता है। वे इस महाजाति के विकास में समाज को और समाज के विकास में राष्ट्र को देखते हैं।''★ *(श्री वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में नायिका परिकल्पना, डॉ. पी.के. इंदिराबाई, जयभारती प्रकाशन, पृ. 198)* जब व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को छोड़कर, समष्टिगत कार्यों में लग जाता है, तब राष्ट्रीयता का जन्म होता है।

राष्ट्र के निर्माण में राष्ट्रीय इतिहास, सामूहिक गौरव और अपमान, सुख और दुःख, भविष्य की आशाएँ, आकांक्षाएँ आदि महत्वपूर्ण होते हैं। आदर्श राष्ट्र वही है जिसके लोग सामूहिक भलाई और उन्नति को व्यक्तिगत अथवा परिवार या जाति की भलाई व उन्नति से भी सर्वोपरि मानते हैं। वे आपस में अपनेपन का भाव रखते और सुख–दुःख को समान रूप से बाँट लेते हैं। राष्ट्र के मनुष्य में भाषा, धर्म,

जाति, सभ्यता आदि की एकता के साथ–साथ भाव या दिल की एकता भी बहुत प्रमुख है।

राष्ट्रीयता के सदुपयोग की अत्यंत आवश्यकता है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के सुख–दुख को अपना सुख–दुख समझें, दूसरे के हित में बाधा न डाले, उसके ज्ञान, अनुभव और शक्ति से उचित लाभ उठावे, यह आवश्यक है। राष्ट्रों के बीच का व्यवहार भी पारस्परिक सहकारिता और सहयोग पर आधारित हो। इस तरह एक सुदृढ़ राष्ट्र के लिए कुछ मुख्य तत्वों का होना आवश्यक है और वे इस प्रकार हैं – एक भूखंड का होना, एक शासन का होना, एक ध्वज का होना, अनेकता में एकता की भावना, एक राष्ट्रीयता का होना आदि।

राष्ट्र का स्वरूप समय और उसकी आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। फिर भी राष्ट्र के लिए कुछ नियामक तत्व होते हैं। ये तत्व राष्ट्र को समृद्ध एवं गौरवशाली बनाने के लिए अनिवार्य हैं। एक राष्ट्र के लिए निम्नलिखित तत्व प्रमुख हैं :– 1. वंशगत एकता 2. सामाजिक एकता 3. परंपरा की एकता 4. आर्थिक एकता 5. धार्मिक एकता 6. भौगोलिक एकता 7. सांस्कृतिक एकता 8. राजनैतिक एकता 9. सांप्रदायिक एकता 10. भाषागत एकता।

एक विशिष्ट भूभाग में जहाँ जलवायु समान रहती है, वहाँ के लोगों में एक प्रकार की एकता पाई जाती है। इसका कारण वहाँ की भौगोलिक परिस्थिति है। 'राष्ट्र के विकास के लिए राजनैतिक एकता की अत्यंत आवश्यकता है। राज्य के आधार पर ही राष्ट्रीय भावनाएँ पनप सकती हैं। अपना राष्ट्र किसी दूसरे के अधीनस्थ रहता है तो, वे उसे छुड़ाने के लिए लड़कर प्राण देने के लिए तैयार होते हैं।''★ *(झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 2)* देश को स्वतंत्रता एवं सुरक्षित रखने के लिए राजनैतिक एकता की अनिवार्यता है।

अगर एक राष्ट्र के निवासी एक ही भाषा वाले हैं, तो स्वाभाविक रूप से भाषा के कारण वहाँ एक प्रकार की एकता पायी जाती है। यह ऐक्य राष्ट्रीय एकता का पोषक है।

एक राष्ट्र के लिए राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगीत अनिवार्य हैं। जब भारत पराधीन था, तब सत्याग्रही, देश का झंडा हाथ में उठाये जुलूस निकाला करते थे। पुलिस की मार खाकर भी वे अपना ध्वज नीचे नहीं छोड़ते थे। राष्ट्रगीत का राष्ट्र के निवासी आदर करते हैं। राष्ट्रगीत में राष्ट्र की एकता का यशोगान रहता है। स्वाधीनता राष्ट्रीयता का प्रबल अंग है। पराधीनता की बेड़ियों को निकालकर मानसिक एवं वैचारिक स्वतंत्रता प्राप्त करना लोग चाहते रहेंगे। स्वाधीनता ही पराधीन देशों में जागरण का कारण बनती है। इस अवस्था में स्वाधीनता की भावना 'राष्ट्रीयता' के ही अन्तर्गत आती है।

4.1. राष्ट्रीयता के साधन :

(i) देश की भौगोलिक स्थिति :

मनुष्य पर भौगोलिक स्थितियों का पूरा प्रभाव पड़ता है। किसी भी देश के निवासियों के स्वभाव, खान–पान, रहन–सहन, ज़रूरतें आदि वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों पर ज़्यादा निर्भर रहते हैं। संसार के किसी भी हिस्से को राष्ट्र मानना है तो उसकी भौगोलिक एकता पर विचार करना अनिवार्य है। भारत में बड़ी–बड़ी नदियाँ और पहाड़ ज़रूर हैं, लेकिन उनके कारण भारत की एकता में कोई बाधा नहीं पहुँचती। आज स्वतंत्र भारत सरकार ने देश की विभिन्न रियासतों को एक सूत्र में गूँथ दिया है। इन विभिन्न विषयों से हमें मालूम होता है कि राष्ट्रीयता की दृष्टि से भारत की भौगोलिक स्थिति संसार के अनेक राष्ट्रों की अपेक्षा निश्चित रूप से अच्छी है।

(ii) भाषा :

किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रीयता की एकता में उसकी भाषा के द्वारा स्थिरता एवं उन्नति मिलती है। कुछ विद्वानों का कहना है कि भारत में अनेक भाषाएँ हैं और यहाँ की भाषा की इस अनेकता के कारण राष्ट्रीयता में बाधा पहुँचती है। लेकिन यह विचार मान्य नहीं है क्योंकि फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका आदि देशों में तीन चार भाषाओं का व्यवहार होता है, फिर भी वे मजबूत राष्ट्र माने जाते हैं। तीन चौथाई से अधिक भारतवासी हिन्दी समझते हैं। आजकल राष्ट्रभाषा के रूप में इसका खूब प्रचार हो रहा है।

(iii) लिपि :

विचार–विनिमय में भाषा की एकता के समान लिपि की एकता भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। लिपि में निम्नलिखित गुण खास तौर पर देखे जाते हैं – 1. सौन्दर्य बोध 2. शीघ्र लेखन की सुविधा 3. निश्चय अर्थात् जो लिखा जाय,

वही पढ़ा जाय। भारत में प्रचलित लिपियों में देवनागरी लिपि सबसे अच्छी है। उसमें ये विशेषताएँ पायी जाती हैं। मद्रास प्रांत को छोड़कर भारत की प्रधान लिपियाँ इससे मिलती–जुलती हैं। अतः भारत की राष्ट्रलिपि भी यही हो सकती है।

(iv) धर्म :

धार्मिक विश्वासों की एकता देश की एकता के लिए अत्यंत आवश्यक और अनिवार्य भी है। धार्मिक सहिष्णुता के लिए भारत वर्ष प्रसिद्ध है। यहाँ हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध और फारसी भाईचारे का नाता बनाये रखते हैं।

(v) जाति :

आजकल एक ही देश में कई जातियों के लोग बसते हैं फिर भी देश की एकता में कोई बाधा नहीं पड़ती। आज जाति–पाँति का बंधन और भेदभाव धीरे–धीरे टूट रहा है। संसार के अन्य देशों की अपेक्षा हमारे देश में जाति–संबंधी हालत अच्छी है और वह राष्ट्रीयता में बाधा नहीं डालेगी।

(vi) संस्कृति :

भारत की संस्कृति कई संस्कृतियों का मिलाप है। पहले यहाँ मुस्लिम संस्कृति आयी। वह आजकल भारतीय संस्कृति में घुल–मिल गई। भारत के ग्राम्य जीवन से भारतीय संस्कृति की विविधता में एकता को हम देख सकते हैं। इस तरह संस्कृति के आधार पर भारतवर्ष के राष्ट्र–निर्माण में संदेह करना भ्रम है।

(vii) राजनैतिक एकता :

राष्ट्रीयता के लिए एक राज्य या शासन का होना अत्यंत आवश्यक है। देश को अलग–अलग हिस्सों में बाँटकर उसका अलग–अलग शासन करना

राष्ट्रीयता तथा राष्ट्र निर्माण के मार्ग में बाधक होगा। सम्राट अशोक और बादशाह अकबर के शासन काल में राजनैतिक एकता कायम थी। परंतु अठारहवीं सदी के शासकों की कमजोरियों के कारण अँग्रेज़ों का आधिपत्य यहाँ जम गया। फिर भी अँग्रेज़ी शासन के फलस्वरूप भारत की राजनैतिक एकता में बड़ी मदद पहुँची। रेल, तार, डाक और अँग्रेज़ी भाषा के प्रचार के माध्यम से राष्ट्र के सभी प्रांतों के लोगों को आपस में संपर्क करने की सुविधा मिल गई। राष्ट्रीयता के विभिन्न साधनों के कारण भारत में एकता और राष्ट्रीयता की भावना संबंधित हो सकी।

4.2. राष्ट्रीयता के पोषक तत्व :

(i) स्वदेशानुराग :

देश के प्रत्येक मनुष्य के मन में अपने देश, अपनी जाति, अपनी भाषा और अपनी संस्कृति के प्रति प्रेम होना चाहिए। प्राचीन काल से हमारी मातृभूमि से ही संसार के अन्य भागों को भी ज्ञान, सभ्यता और धर्म का प्रकाश प्राप्त हुआ। श्रीराम, श्रीकृष्ण, हरिश्चंद्र, भीष्म आदि आदर्श पुरुषों की यह जन्मभूमि रही है। ऐसे महान देश में रहकर भी अगर किसी के मन में यहाँ की भाषा, संस्कृति आदि से प्रेम नहीं रहे, तो वह इस देश का अपमान ही होगा।

(ii) राष्ट्र के प्रति त्याग एवं बलिदान का भाव :

अपने राष्ट्र को विदेशियों के अत्याचार और शोषण से मुक्त कराने के लिए अनेक वीर पुरुष और स्त्रियों ने अपने जीवन की बलि दी है। उनमें राष्ट्र की सारी जनता की भलाई की कामना रहती है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में मातृभूमि के लिए समस्त जीवन समर्पित करने वाले अगणित स्त्री–पुरुषों को श्रद्धांजलि अर्पित की है। वृंदावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' की नायिका रानी लक्ष्मीबाई अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए जीवन भर तलवार से प्यार करती रही और भारतीय नारियों के हृदय में अतीत की एक दिव्य ज्योति भरती हुई त्याग और बलिदान से युग–युग तक त्रस्त और निराश लोगों के पथ का सहारा बन गई।

(iii) राष्ट्रीय पर्व और त्योहार :

राष्ट्रीय भावों के प्रचार के लिए सांप्रदायिकता या प्रान्तीयता के संकुचित विचार से हमारा ऊपर उठना आवश्यक है। देश भक्ति, त्याग और बलिदान आदि अच्छी–अच्छी भावनाएँ बढ़ाने के लिए आदर्श पुरुषों की जयन्तियाँ मनायी जाती हैं। हिन्दू, मुसलमान और ईसाइयों के सभी धार्मिक त्योहार हर भारतीय से मनाया जाए क्योंकि उन त्योहारों के पीछे छिपे महान आदर्शों का बोध हो सके।

विजयदशमी श्रीरामचन्द्र जी की लंका विजय के दिन मनायी जाती है। यह त्योहार असत्य पर सत्य की, अधर्म पर धर्म की और दानवता पर मानवता की विजय का प्रतीक है। ऐसे पवित्र दिनों का राष्ट्रीय त्योहार मानना बिलकुल उचित है।

(iv) जनता में राष्ट्रीयता का प्रचार–प्रसार :

जनता में राष्ट्रीय भावों का प्रचार–प्रसार करने के लिए राष्ट्रीय त्योहारों के अवसर पर राष्ट्रोन्नत्य मूलक उपयोगी विषयों पर राष्ट्रगीतों का गायन, सिनेमा, नाटक, आदि के अभिनय का प्रबंध किया जा सकता है।

(v) स्वदेशी वस्तुपयोग :

स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग द्वारा देश की आर्थिक स्थिति को सुधार सकते हैं। स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग से करोड़ों रुपयों का प्रतिवर्ष विदेश में जाना रुक जाता है और उसका उपभोग राष्ट्र के बहुमुखी विकास की दिशाओं में हो सकता है।

(vi) मातृवंदना :

रोज अपने इष्ट देवी–देवताओं की आराधना के साथ–साथ जननी और श्जन्मभूमि की भी उपासना और वंदना करें तथा उसकी सेवा करने का मन में संकल्प कर लें। राष्ट्रीयता वह अनुभूति है, जिससे विशिष्ट भूभाग में रहनेवाले निवासियों के मन में अपनी भूमि को उन्नत एवं समृद्ध बनाने का भाव उत्पन्न होता है। देश की प्राचीनता, उसकी संस्कृति आदि से देश भक्ति की भावना देशवासियों के मन में जगती है। पराधीन देशों में राष्ट्रीय भावनाएँ केवल स्वदेशानुराग द्वारा ही प्रकट होती है क्योंकि देश जब पराधीन रहता है, तब धर्म, समाज आदि का उत्थान यद्यपि सरकार के द्वारा होता है, तथापि लोग यही चाहेंगे कि वे पराधीनता से मुक्त हों। इस देश की ओर उन्हें अग्रसर करनेवाला तत्व देश भक्ति है स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश भक्ति ही राष्ट्रीयता का रूप धारण करती है।

राष्ट्रीयता के अन्तर्गत राष्ट्र को विदेशियों के अत्याचार और शोषण से मुक्त करने की भावना निहित रहती है। उसमें राष्ट्र की सारी जनता की भलाई की कामना रहती है। इससे नारी जागरण को विशेष महत्व दिया जाता है, पराधीनता को हेय माना जाता है और आत्म निर्भरता का समर्थन किया जाता है। भारत में प्राचीन काल से ही राष्ट्रीय भावों का विकास हो रहा है। प्रारंभिक अवस्था में भारत अपनी संस्कृति के कारण एक होकर रहता था। मध्य युग में सम्राट अशोक के बाद ऐसे सशक्त राजा का अभाव था जिससे भारत–भूमि अलग–अलग हिस्सों में बँट गयी। एक प्रांत के लोग दूसरे प्रांत वालों से झगड़ा करते थे। फलस्वरूप मुसलमान लोग भारत पर आक्रमण करने लगे। भारत की एकता टूट गयी। उस समय राजाओं में वीरता की कमी नहीं थी, बल्कि उनमें राष्ट्रीयता की भावना की कमी थी। इस कारण यहाँ के कुछ देश द्रोही व्यक्ति अपनी स्वार्थ–सिद्धि के लिए युद्धों के समय अपने ही देशवासी राजाओं तथा सैनिकों के विरुद्ध लड़नेवाले विदेशी आक्रमणकारियों की सहायता करने लग जाते थे। फलस्वरूप देश पराधीन हो गया।

मुसलमानों के बाद अँग्रेज़ भारत आये। भारतीय वीरों की सहायता से अँग्रेज़ों ने भारत के अधिकांश भाग जीत लिये। इसका कारण यह भी था कि भारतीयों में संगठन और राष्ट्रीयता की कमी थी। भारत में पुनः राष्ट्रीय चेतना का उद्दीपन अठारहवीं सदी में हुआ। पर उसका विकास उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफिक सोसाइटी आदि संस्थाएँ राष्ट्रीयता के विकास के प्रमुख माध्यम थीं।

4.3. राष्ट्रीयता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :

उन्नीसवीं शताब्दी में जबकि भारत पूर्ण रूप से अँग्रेज़ों के अधीन हो गया था, तब राजनैतिक जागरण उत्तर और दक्षिण भारत में समान रूप से हुआ। वस्तुतः राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति हिन्दी के काव्यों और उपन्यासों में प्रचुर मात्रा में पायी जाती है।

राष्ट्रीय एकता के कारण ही राष्ट्र के विकास को बल मिलता है। एकता दो प्रकार की होती है – भौगोलिक एकता और भावात्मक एकता। राष्ट्र कवियों और साहित्यकारों ने जनता में भावात्मक एकता जगाकर राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार किया। राष्ट्र के प्रति प्रेम करना राष्ट्रीयता का महत्वपूर्ण अंग है। देश–प्रेम का भाव जनता में जगाने के लिए यहाँ के कवियों तथा उपन्यासकारों ने अपनी–अपनी रचनाओं के माध्यम से बहुत ही स्तुत्य प्रयास किया। उन लोगों ने देश की महिमाओं का और उसके प्राकृतिक सौन्दर्य का अनुपम चित्रण करके जनता में देशभक्ति की भावना जगाई। उन्होंने देश की अतीतावस्था से वर्तमान की तुलना करके अतीत को गौरवपूर्ण और वर्तमान को दोषपूर्ण कहा। राष्ट्रीय कवियों ने भारत पर विदेशियों के शोषण और शासन का घोर विरोध किया और दोनों की समाप्ति के लिए तीव्र आंदोलन किया। ''भारत–भारती'' में गुप्तजी ने देशवासियों का आह्वान करते हुए स्पष्ट कहा है : ''हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी, आओ, विचारें आज मिलकर, ये समस्याएँ सभी।''★ *(श्री वृंदावनलालवर्मा के उपन्यासों में नायिका परिकल्पना, डॉ. पी.के. इंदिराबाई, जयभारती प्रकाशन, पृ. 206)* समाज में नारी को गौरवपूर्ण स्थान प्रदान करने के लिए कवियों ने अधिक लिखा है।

जिस समय हिन्दी उपन्यास साहित्य का आविर्भाव हुआ, भारत दासता की श्रृंखला में जकड़ा हुआ था। ब्रिटिश साम्राज्य की पूर्ण स्थापना हो चुकी थी, अँग्रेज़ों ने अपने स्वार्थ–साधन के धुन में भारत के हितों को ठुकरा दिया। परिणामस्वरूप भारत अधोगति की अवस्था को पहुँच रहा था। भारतीयों में चेतना और जागृति के प्रति विशेष उत्साह न था। अपनी शोचनीय अवस्थाओं को अपना दुर्भाग्य तथा नियति का विधान मानकर वे लोग चुपचाप अँग्रेज़ों के प्रति अपनी स्वामिभक्ति का परिचय दे रहे थे। नारियों की स्थिति तो और भी शोचनीय थी। आवश्यकता थी कि साहित्य के माध्यम से इतिहास के गौरवशाली पृष्ठों में से नारी के अनुकरणीय आदर्शों को पुनः नये सिरे से प्रस्तुत किया जाय, जिससे नारियों को एक दिशा प्राप्त हो सके और वे अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट होकर राष्ट्र के नव निर्माण के दायित्व में सामूहिक रूप से जुट जाएँ। तत्कालीन समाज की आवश्यकताओं को प्रकट करने एवं नवीन चेतना तथा जागरण के प्रसार की दिशा में उपन्यास एक शक्तिशाली माध्यम है। वास्तव में उपन्यासकारों का दायित्व मनोरंजक कथा का वर्णन करना मात्र नहीं, निर्माण का भी होता है – व्यक्ति का, समाज का, राष्ट्र का निर्माण करना लेखक का प्रमुख उत्तरदायित्व होता है।

4.4. राष्ट्रीय भावना की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :

हिन्दी के राष्ट्रीय काव्यों और उपन्यासों में अभिव्यंजित राष्ट्रीय भावना की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं :–

1. विदेशी शोषण और शासन का विरोध।
2. अत्याचार के प्रति आक्रोश।
3. अतीत का गौरव गान।

4. जाति, धर्म और संप्रदाय के प्रति विरोध।

5. किसान और मज़दूरों की दुरावस्था को दूर कर उनमें सुधार लाने का भाव।

6. हिंसा और क्रांति का खण्डन तथा अहिंसा, सत्याग्रह और सुधार का समर्थन।

7. रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों का विरोध।

8. देश प्रेम की भावना।

(i) विदेशी शोषण और शासन का विरोध :

अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में विदेशियों द्वारा भारतीय जनता का शोषण तीव्र रूप में होता था। उस समय अँग्रेज़ लोग दुनिया के अनेक देशों के शासक थे। वे राजनीतिक अधिकारों को लेकर जनता का शोषण करते थे। राष्ट्रवादियों ने इस विदेशी शासन नीति का विरोध किया और उन विदेशियों के विरुद्ध जनता को जगाया। पंडित रामनरेश त्रिपाठी अपने 'पथिक' काव्य में विदेशी शासन को पलटने की प्रार्थना प्रजा से यों करते हैं।

"एक व्यक्ति निर्दयी निरंकुश बन बैठा अधिकारी।
शासन है कर रहा तुम्हीं पर लेकर शक्ति तुम्हारी।
अत्याचार स्वयं अपने ही अपर तुम करते हो।
अपने ही हाथों अपने को मार–मार मरते हो।

.....

पराधीन रहकर सुख शोक न सह सकता है
यह अपमान जगत में केवल पशु ही रह सकता है।"★

(पथिक, रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 47)

(ii) अत्याचार के प्रति आक्रोश :

अँग्रेज़ शासक लोक छल–बल से भारतीय जनता को दबाये रखने में लगे हुए थे। आर्थिक रूप से भारत का शोषण एवं भारत की शिक्षा, संस्कृति आदि का ध्वंस करने के द्वारा वे अपने शासन की नींव को सुदृढ़ बनाते जा रहे थे। अँग्रेज़ी साम्राज्यवादिता का दमन–चक्र उत्तरोत्तर भारतीय समाज को दबाता जा रहा था। जनता में निराशा, निर्बलता आदि नाशक तत्व बढ़ते जा रहे थे। विदेशी शासन में अपने राष्ट्र में दीन–हीन होकर जीवन यापन करने की विवशता से जन मानस और उनके मन में अत्याचार के विरुद्ध आक्रोश की भावना जाग उठी। राष्ट्र की इसी जागृति को प्रेरित एवं मजबूत बनाने के सेवा कार्य में राजाराम मोहनराय, स्वामी दयानंदसरस्वती, महात्मा गाँधी आदि दत्तचित्त हुए। अत्याचार के विरुद्ध आक्रोश का भाव दिखाने वाले कवि देश को बचाने के लिए जागरण का संदेश देता है।

(iii) अतीत का गौरव गान :

संसार में राष्ट्रीय गौरव के साथ व्यक्ति का नाम जुड़ा हुआ है। अतः नागरिकों में राष्ट्रीय गौरव की भावना जागृत करने के लिए ऐतिहासिक उपन्यासकार अपनी कृतियों में इतिहास के उन महापुरुषों का जीवन–चरित्र प्रस्तुत करता है, जिन्होंने राष्ट्र के गौरव को उन्नत और अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर अपने राष्ट्र प्रेम का अनन्य उदाहरण प्रस्तुत किया है। कुछ कवियों ने अतीत की गौरवपूर्ण स्थितियों को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न अपनी कविताओं के द्वारा किया है। मैथिलीशरण गुप्त जी की कविताओं में इस प्रकार की प्रवृत्ति अधिक देखी जा सकती है।

(iv) जाति, धर्म और संप्रदाय के प्रति विरोध :

जाति राष्ट्रीयता का पोषक अंग नहीं है। जाति, धर्म या संप्रदाय के कारण राष्ट्रीयता खंडित होती है। प्राचीनकाल से ही हमारे देश में जाति–पाँति का

भेदभाव रहा है। भारतीय नागरिक जाति–भेद करके परस्पर द्वेष बढ़ाते थे। भारतीय राष्ट्रीय जागरण में धर्म, जाति इत्यादि के भेदभाव ही बाधक रहे। इन्हीं के कारण राष्ट्र एकता को खो बैठा और विदेशी सत्ता के अधीन रहने को बाध्य हुआ। इस भयंकर सत्य की जानकारी होते ही महान ज्ञानी लोग देश भर की सुप्त शक्तियों को जगाने के पवित्र कार्य में लग गये। यही राष्ट्र जागरण, राष्ट्र आवेश इत्यादि के रूप में परिणत हुआ। वृंदावनलाल वर्मा ने इस जातिगत भेदभाव को भारतीय इतिहास की कसौटी पर परखा है। यह भेदभाव वर्णाश्रम व्यवस्था के आधार पर उगा और फला–फूला है। भेदभाव इतना बढ़ा कि विदेशी लोग भारत में आये और परस्पर झगड़ते हुए भारतीयों पर चढ़ बैठे। यह जाति जनित संकीर्णता वर्माजी को चुभी है। उन्होंने परस्पर भेदभाव का उन्मूलन करने का प्रयास अपने उपन्यासों के द्वारा किया है। इसी प्रकार राष्ट्रवादी कवि राष्ट्र की भलाई चाहता है। इसलिए वह जाति–धर्म के प्रति विरोध करता है। श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने अपनी 'रश्मिरथी' काव्य में जाति का घोर विरोध करते हुए लिखा है – ''जाति–जाति–रहते जिनकी पूँजी केवल पाखंड।''★ *(रश्मिरथी, श्री रामधारीसिंह 'दिनकर', पृ. 45)*

(v) किसान और मज़दूरों की दुरावस्था को दूर कर उसमें सुधार लाने का भाव :

वर्माजी ने अपने सामाजिक उपन्यास 'अमरबेल' में ग्रामीण समाज के ढहते शोषकों और ग्राम्य जीवन के जीर्णोद्धार का चित्रण किया है।'' *(अमरबेल, श्री वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन प्रा. लि. पृ. 65)* इसके साथ उन्होंने कृषक जीवन के अगणित दुःखों और शासन संबंधी घोर व्यवस्था का चित्रण भी किया है। उनकी दृष्टि निर्बल को सबल, अव्यवस्थित को व्यवस्थित और कुरूप को सुंदर बनाने की रही है।

(vi) हिंसा और क्रांति का खंडन तथा अहिंसा, सत्याग्रह और सुधार का समर्थन :

अँग्रेज़ शासक लोग छल–बल से भारतीय जनता को दबाये रखने में लगे हुए थे। आर्थिक रूप से भारत का शोषण एवं भारत की शिक्षा, संस्कृति आदि का ध्वंस करने के द्वारा वे अपने शासन की नींव को सुदृढ़ बनाते जा रहे थे। जनता में निराशा, निर्बलता आदि नाशक तत्व बढ़ते जा रहे थे। वे अपनी पराधीनता को दूर करने के लिए हिंसा और क्रांति का उपाय सोचने लगे। लेकिन उन दोनों का खंडन करके अहिंसा, सत्याग्रह और सुधार का समर्थन महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानन्द, दयानंद सरस्वती आदि ने किया।

(vii) रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों का विरोध :

हमारा समाज धार्मिक अंधविश्वास, रूढ़िग्रस्त धारणा, जाति–परिवर्तन आदि अनेक समस्याओं में उलझा है। गाँधीजी ने हरिजनों में समता का भाव उत्पन्न किया और दयानंद ने सशक्त आंदोलन आरंभ किया कि कोई भी हिन्दू धर्म में आ सकता है। उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा ने युगानुरूप सामाजिक स्थिति को मार्मिकता से ग्रहण किया और 'प्रत्यागत' उपन्यास के द्वारा उन्होंने रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों का विरोध किया है।''★ *(प्रत्यागत, श्री वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन प्रा. लि. पृ. 60)*

(viii) देश प्रेम की भावना :

देश के प्रत्येक नागरिक के मन में अपने देश के प्रति अपार देश प्रेम निहित रहता है। उनके जीवन का सूक्ष्मतम पक्ष भी राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत रहता है। वर्माजी में राष्ट्रीयता और स्वदेश प्रेम सांस्कारिक तत्व हैं। स्वदेश प्रेम की प्रबल भावना के उदय में उनके अध्ययन का भी प्रभाव स्वीकार किया जायेगा, जिसने

गरजती शैवालिनी के सम्मुख पत्थर बनकर उसके वेग को प्रचंड बना दिया। मार्सडन तथा अन्य अँग्रेज़ एवं विदेशी लेखकों का भारत का अपमान, यहाँ की वीरता और महानता पर व्यंग्य देख उनका मन तिलमिला उठा। उन्होंने अपनी डायरी में स्वयं लिखा है – ''मैं मनुष्य हूँ, मनुष्य का कर्तव्य स्पष्ट है, देश के लिए साहित्य सेवा और समाज सुधार और घर के लिए रुपये कमाना।''★ *(वृंदावनलाल वर्मा : साहित्य और समीक्षा, सियाराम शरण प्रसाद, साहित्य प्रकाशन, पृ. 30)* वृंदावनलाल वर्मा के 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' उपन्यास के सभी पात्र देश प्रेमी और राष्ट्रीय भावना के पुजारी हैं।

5. 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' में नायिका परिकल्पना और राष्ट्रीय भावना

'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' वर्माजी की महत्वपूर्ण कृतियों में से एक है। इस ऐतिहासिक उपन्यास की रचना सन् 1946 में हुई। प्रस्तुत उपन्यास की मुख्य कथा बालिका मनू के झाँसी की रानी बनने, विधवा होने के बाद सन् 1857 में राज्य संभालने तथा अंत में अँग्रेज़ों से लड़ते प्राणोत्सर्ग करने की है।

'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' वर्माजी के संपूर्ण नारी पात्रों की चरम परिणती है। लक्ष्मीबाई में स्त्री सुलभ कोमलता के साथ–साथ पुरुषार्थ और कर्मठता का ऐसा समन्वय है जो हिन्दी साहित्य में पहली बार ही सामने आया है। वर्माजी द्वारा निर्मित अन्य नारी पात्रों की तुलना में लक्ष्मीबाई एक ऐसी अद्‌भुत मौलिकता लेकर सामने आती है जो एक नितांत भिन्न व्यक्तित्व प्रदान करती है। लक्ष्मीबाई के चरित्र में वर्माजी ने भारतीय नारी के लिए अपेक्षित सारे गुणों का समावेश कर आदर्श की पूर्णता चरितार्थ करने का प्रयास किया है। लक्ष्मीबाई एक संभ्रांत नारी के समान सामान्य स्त्रियों में मिलती–जुलती है। दासियों को अपनी सखी का

दर्जा देती है। अधेड़ अवस्था और चिड़चिड़े स्वभाववाले पति के साथ उसका व्यवहार वैसा ही रहता है जैसा कि एक आदर्श भारतीय पत्नी का रहता आया है। पुस्तकालय को भस्म होता हुआ देखकर वह सामान्य नारी के समान रोती और झाँसी के पतन होने पर आत्महत्या तक करने पर उतारू हो जाती है। उसके चरित्र में अदम्य वीरत्व के साथ मातृत्व और पत्नीत्व की संपूर्ण कोमलता मिलकर उसके चरित्र को एक अद्‌भुत आकर्षण प्रदान कर देती है।

उपन्यास में रानी लक्ष्मीबाई का प्रथम दर्शन तेरह वर्ष की बालिका मनू के रूप में होता है। वह बालिका सुंदर, चपल, साहसी, वीर तथा शिक्षिता भी है। बालिका मनू में इन गुणों का समावेश कर वर्माजी ने भावी महारानी लक्ष्मीबाई की एक अत्यंत सुंदर और मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि तैयार की है। लक्ष्मीबाई के चरित्र को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. बाल्यकाल से परिणय संस्कार के पूर्व तक।
2. शादी से गंगाधरराव की मृत्यु तक।
3. वैधव्य आरंभ से समाप्ति तक।

बालिका मनू मोरोपंत की लड़की है। उसकी उम्र लगभग तेरह साल की है। नाना धोंडूपंत और राव साहब उसके बाल्यकालीन मित्र हैं। वह उनके साथ खेलती, खाती और पढ़ती है। मलखंभ, कुश्ती, तलवार और बंदूक चलाना, अश्वारोहण, पठन–पाठन इत्यादि तीनों बचपन से एकसाथ करते रहे हैं। मनू सुंदर, कुशाग्रबुद्धि और होनहार है। वह जितनी वाचाल है उतनी चपल भी है और जितनी हठीली होती है उतनी ही निर्भीक भी। छुटपन से ही उसमें अस्त्र संचालन की अधिक रुचि है। उसके ही शब्दों में यह स्पष्ट है, ''मैंने शास्त्र आँखों से देख–भर लिए हैं। मुझको तुलसीदास की रामायण बड़ी प्रिय लगती है परंतु तलवार चलाना, मलखंभ भाँजना, घोड़े की सवारी, ये उससे भी बढ़कर आते हैं।''★ *(झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, श्री वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 27)*

उसमें पौराणिक गाथाओं और इतिहास का पूर्ण ज्ञान है। इन्हीं के आलोक में वह उस काल की परिस्थितियों पर सोचती है और अपने पिताजी से विचार भी करती है। छत्रपति शिवाजी इत्यादि की वीरता और अर्जुन–भीम इत्यादि के आख्यानों ने मनू की कल्पना को एक अस्पष्ट और अदम्य गुदगुदी दे रखी है। उपन्यासकार ने उपन्यास के आरंभिक परिच्छेदों में उसकी बालवृत्तियों पर प्रकाश डालकर लक्ष्मीबाई के प्रबल चरित्र की मनोवैज्ञानिक भूमिका तैयार की है।

चौदह वर्ष की मनू का ब्याह चालीस वर्ष के गंगाधरराव से होता है। अवस्था की यह विषमता उसके हृदय में तनिक–सा भी क्षोभ या विद्रोह की भावना उत्पन्न नहीं करती; क्योंकि उसकी दृष्टि में यह विवाह अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए एक साधन मात्र था। इसलिए वह एक आदर्श पत्नी भी बनी रहती है और साथ ही अपनी महत्वकांक्षा, देश की आज़ादी को प्राप्त करने के प्रति भी निरंतर प्रयत्नशील बनी रहती है। वह अँग्रेज़ की कपट नीति समझती है। अतएव एक ओर दलित नैराश्यग्रस्त वातावरण में कार्यारंभ करती है। वह अपनी सभी दासियों को सखी–सहेली के रूप में देखना चाहती है क्योंकि वह पूर्णतया अनुभव करती है कि उसे दासी नहीं, सहेलियों की इस पवित्र अनुष्ठान में आवश्यकता है, जो उसके साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल सके। रानी ने अपनी दासियों को घुड़सवारी, मलखंभ, कुश्ती, हथियार चलाना आदि के लिए प्रेरित किया और अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहा कि ''पुरुषों को पुरुषार्थ सिखलाने के लिए स्त्रियों को मलखंभ, कुश्ती आदि सीखना ही चाहिए। खूब तेज दौड़ना भी। नाचने–गाने से भी स्त्रियों का स्वास्थ्य सुधरता है, परंतु अपने को मोहक बना लेना ही तो स्त्री का समस्त कर्तव्य नहीं है।''★ *(झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 51)*

रानी में चरित्र की गरिमा भी है। जब स्त्रियाँ पुरुष से शिक्षा पाने में संकोच करती हैं तब उनको समझाते हुए रानी का कहना है कि अगर स्त्रियाँ दृढ़ता का कवच पहन लेंगी तो इस संसार में ऐसा पुरुष कोई हो ही नहीं सकता जो उनको लूट ले। हमेशा फूलों से नाता बनाये रखना है मगर मिट्टी से संबंध तोड़कर नहीं। अर्थात् वह जीवन का सौन्दर्य और यथार्थ तथा शौर्य से श्रृंगार करना चाहती है, जिस धातु की वह स्वयं भी है। ये सब उसके जीवन में नव जीवपन संचार करनेवाले ओज हैं, क्रिया–कलाप हैं। रानी स्वभाव से अक्खड़ और उद्धत है। विवाह के अवसर पर जब गाँठ बाँधते समय पुरोहित का हाथ बार–बार काँप उठता है तो मनू बिना मुस्कुराए दृढ़ स्वर में कहती है कि ऐसी बाँधिए कि कभी छूटे नहीं। अपने विवाह के अवसर पर साधारण कन्याएँ चुपचाप बैठती हैं। लेकिन मनू साधारण कन्या से परे थी।

रानी लक्ष्मीबाई सदैव चौकन्नी और जागरूक बनी रहती थी। प्रत्येक व्यक्ति की गतिविधि पर उनकी दृष्टि लगी रहती थी। झाँसी की रानी बनने के बाद लक्ष्मीबाई के इन गुणों का विकास होता है। वह राजमहल के चारदीवारी के अंदर घुड़सवारी का प्रबंध कर लेती है और अन्य स्त्रियों को शस्त्र संचालन सिखाया करती है। झाँसी के उस प्रसिद्ध नारी सेना को देखकर बड़े–बड़े अँग्रेज़ सेनापति दंग रह गये थे। रानी शौर्य और पूजा के साथ–साथ आध्यात्मिक वृत्ति रखती है। बचे हुए समय में धार्मिक ग्रंथों का नियमपूर्ण अध्ययन करती है। भगवद्गीता पर उसकी परम श्रद्धा थी। इसी धार्मिक वृत्ति का, अंत समय तक उसमें निर्वाह है, चाहे परिणाम अनुकूल हो या प्रतिकूल। वह धर्म के सच्चे मार्ग को पहचानने वाली नारी है। परंतु वह आत्मा के साथ शरीर पर भी ध्यान देती है। उसका मानना है कि सारे स्मृतियों का पोषक यह शरीर और उसके भीतर आत्मा है, उनको पुष्ट करके प्रबल बनाना है।

वह महारानी होकर भी पत्नी रूप को नहीं भूलती। वह पति का ख्याल रखती है और उनकी उचित सेवा–शुश्रूषा करती है परंतु गंगाधरराव का आलसी स्वभाव, अत्यधिक कलाप्रिय होना उसको अखरता है; क्योंकि वह जानती है कि एक राजा के लिए यह स्वभाव शोभाजनक नहीं होती है। वह उनको सजग करना चाहती है इसलिए उनसे व्यंग्य भरी बातों में कहती है कि "आपके यहाँ भाट क्या केवल प्रशंसा और यशगान ही करते हैं या कभी–कभी कड़खा भी सुनाते हैं।"★ *(झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 60)* उसके व्यंग्य की बातें यहाँ तक नहीं रुकती; नायिका भेद के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए वह राजा से कई प्रश्न करती है जिसे वर्माजी ने बखूबी से इस उपन्यास में प्रकट किया है। रानी का राजा से पूछना था कि स्त्रियों के पूरे शरीर की सूक्ष्म जाँच–पड़ताल के लिए इन कवि, कलाकार और चित्रकारों को इनाम, पुरस्कार देते हैं? भूषण की छत्रपति शिवाजी क्या इसी तरह की कविता के लिए बढ़ावा दिया करते थे? भूषण तो दरबार की शोभा रहे होंगे? "इन दिनों अब इससे (नाटकशाला के मनोरंजन से) अधिक और हो ही क्या सकता है? राज्य का काम चलाने के लिए दीवान हैं; डाकुओं का दमन करने और प्रजा को ठीक पथ पर चालू रखने के लिए अँग्रेज़ी सेना है। खुशामद कर ली। बस सब काम ज्यों का त्यों मनमाना चलता रहा।"★★ *(झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 62)* इस प्रकार वह अपने पति को विलासप्रियता और अत्यधिक कलाप्रियता से उठाकर कर्मठता की ओर सजग करने का प्रयत्न करती है और उसमें सफल भी होती है।

लक्ष्मीबाई मात्र अपने पति को ही नहीं प्रेरित करती, अपनी सहेलियों और जनता को भी प्रेरित करती है। वह कर्म को प्रधानता देती है न कि फल को। वह अपनी सहेलियों को कर्म का महत्व समझाते हुए और उसका पालन करने का

अनुरोध करते हुए कहती है, ''हमको जो कुछ करना है उसकी दिशा निश्चित है। मार्ग में विघ्न बाधाएँ तो आती ही हैं। ... भगवान कृष्ण की आज्ञा को याद रखो कि हमको केवल कर्म करने का अधिकार है। कर्म के फल का नहीं। देखो छत्रपति के उपरांत जिन लोगों ने स्वराज्य के आदर्श को आगे बढ़ाया और उसकी जड़ें प्रबल बनाईं, वे बाधाओं का डटकर प्रतिशोध करते रहते थे, जिन लोगों की लालसा अपने लिये फलों की ओर गई वे गिर गए और स्वराज्य धारा धीमी पड़ गई। परंतु वह सूखी कभी नहीं। दादा बाजीराव पेशवा हतप्रभ होकर बिठूर चले आये। परंतु हम लोगों को वे स्वराज्य की शिक्षा देने से कभी नहीं चूके।''★ *(वही, पृ. 116)* अपने इस कथन से वह सेना, जनता और सहेलियों को प्रेरित करती है और कर्मयोग के महत्व को समझाती है।

उपन्यास में उसका जो कथन पत्नी के रूप में है, माता के रूप में, उससे कम स्थान नहीं है। लक्ष्मीबाई के एक लड़का उत्पन्न होता है परंतु वह अल्पायु में ही मर जाता है। तब राजा–रानी बहुत दुखी होते हैं। जब राजा गंगाधरराव लक्ष्मीबाई के सामने दामोदरराव नामक लड़के को गोद लेने का प्रस्ताव रखते हैं, तब वह सहसा स्वीकार करती है। वह दामोदर राव को ऐसे पालती–पोसती है जैसे एक माता अपने सगे बेटे की देखभाल करती है। दामोदरराव पूर्ण रूप से मातृप्रेम पाता है। इसी बात को बताते हुए उपन्यासकार लिखते हैं – ''दामोदरराव रानी के प्रगाढ़ स्नेह में पल रहा था, बढ़ रहा था। कोई निज माता अपने गर्भ–प्रसून को इतना प्यार न करती होगी जितनी वह दामोदरराव को चाहती थी।''★★ *(वही, पृ. 150)* मगर इस उपन्यास में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का एक वीर नारी और योग्य संचालिका के रूप में जितना मार्मिक एवं सफल चित्रण हुआ है, उतना पत्नी और माता के रूप में नहीं।

राजा गंगाधरराव बीमारी की वजह से मर जाता है। झाँसी में अँग्रेज़ी सरकार की स्थापना हो जाती है। यह बात रानी को दुःख पहुँचाती है परंतु उसमें जो राष्ट्र–प्रेम है, वह उसे जल्दबाजी में कोई काम करने से रोक देता है, वह बुद्धि से काम लेती है। वह सोचती है अभी विद्रोह का समय नहीं है। वह मुख्य व्यक्तियों से मिलती है और उनके अनुरोध पर विद्रोह का नेतृत्व स्वीकार करती है। वह झाँसी में आदर्श कार्य करती है। जाति–भेद को तोड़ देती है और सभी को एक दूसरे की सहायता करने की प्रेरणा देती है। इस प्रकार वह जन मानस को प्राप्त करती है और नर–नारियों में झाँसी को स्वतंत्र करने की भावना को जगाती है। वह कहती है – ''आप लोग भी केवल इतना करें – नातेदारियों में अपना मेल बढ़ाएँ और उनको अपनावें। सबके काम में पड़ें और छोटी से छोटी जाति के पुरुष या स्त्री को, गरीब से गरीब, मज़दूर या किसान को कदापि छोटा न समझें। सब जातियों और सब वर्गों को बिना अपना उद्देश्य बतलाए, हथियार चलाना सिखाएँ।''★ *(वही, पृ. 135)* जनता के प्रति उसमें अगाध विश्वास है। वह जनता को महान बताती हुई कहती है कि जनता असली शक्ति है, वह अक्षय है। छत्रपति ने जनता के भरोसे ही इतने बड़े दिल्ली सम्राट को ललकारा था। राजाओं के भरोसे नहीं। जो साधन जहाँ मिले उसका उपयोग करना चाहिए। जनता मुख्य साधन है, राजा और नवाब पीढ़ी दो पीढ़ी ही योग्य होती। परंतु जनता की पीढ़ियों की योग्यता कभी नहीं छीजती। वह शासन व्यवस्था को अच्छी तरह जानती है। नियम और संयम शासन व्यवस्था को दृढ़ बनाते हैं। लक्ष्मीबाई में इनका सुंदर समन्वय हुआ है। उसके सिपाही कुछ अँग्रेज़ों को मार डालते हैं। यह समाचार पाकर वह अपने सिपाहियों से कहती है, ''इन्हीं कार्यों से स्वराज्य और बादशाही स्थापित करोगे? तुम लोगों ने घोर दुष्कर्म किया है। क्या तुम यह समझते हो कि संसार से सब नियम–संयम उठ गए?''★★ *(वही, पृ. 181)* बुद्धि और वीरता के सुंदर समन्वय से ही क्रांति सफल होती है; क्योंकि दोनों से बनी शक्ति ही अधिक बलवती होती

है। किसी एक के अभाव में संचालन व्यवस्था में ढीलापन आ जायेगा। 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' में इस प्रकार का सुंदर समन्वय हुआ है।

अँग्रेज़ी सेना झाँसी को अपने अधीन कर लेते हैं तो सुंदर पीड़ा से मर्माहत होकर बेहोश हो जाती है। तभी रानी दृढ़ता से सुंदर को समझाती है कि मूर्छित होना किससे सीखा? क्या इस छोटे से राज्य के लिए हम लोग जीवित हैं? आगे वह प्रतिज्ञा करती है कि मैं केशमुण्डन तभी कराऊँगी जब हिन्दुस्तान को स्वराज्य मिल जायेगा, नहीं तो श्मशान में अग्निदेव मुंडन करेंगे। उसके विशाल हृदय का परिचय उस स्थल पर भी मिलता है जब उसकी सहेलियाँ राज्य अपहरण से दुखी होकर उसके सामने आभूषण व अलंकार के बिना उपस्थित होती हैं। वह कहती है – "ये चिह्न तो असमर्थता और अशक्ति के हैं। अपने सब आभूषण पहनो और इस प्रकार रहो मानो कुछ हुआ ही नहीं। ... ये आँसू बल का क्षय करेंगे।"★ *(वही, पृ. 115–116)*

लक्ष्मीबाई अनाचार और अत्याचार को कभी प्रश्रय नहीं देती क्योंकि उसे विश्वास है कि अनाचार और अत्याचार को प्रोत्साहन मिलने से वह अधिक बढ़ जाता है। वह स्वराज्य संग्राम में बहुत उत्साह से आगे बढ़ती है और इसी यात्रा में मर मिटती है।

'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' प्रधान रूप से वीरांगना नायिकाओं की कोटि में आ जाती है। इसमें गृहस्थ नायिका के लक्षण भी गौण रूप से देखे जा सकते हैं। बालिका के रूप में उसका जो चित्र खींचा गया है उसमें सहजता है, क्योंकि साधारणतः बालिकाएँ कुशाग्र बुद्धि की और होनहार होती हैं। साथ–साथ चपल और हठी स्वभाव की भी होती हैं। उपन्यासकार ने इन बाल–प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालकर लक्ष्मीबाई के प्रबल चरित्र की मनोवैज्ञानिक भूमिका प्रस्तुत की है। बचपन

से ही उसमें राष्ट्र प्रेम की भावना, इतिहास के महत्वपूर्ण पृष्ठों में विकासोन्मुख है। जब से वह गंगाधरराव की पत्नी बनती है तभी से वह दूसरों को प्रेरणा देती जाती है। बहन के रूप में सहेलियों को, पत्नी के रूप में पति को और स्वतंत्रता संग्राम की क्रांतिकारिणी और महारानी के रूप में जनता को प्रेरित करती रहती है। उसमें कर्तव्य और दृढ़ता, वीरता और बुद्धिमत्ता, देशभक्ति और कर्म योग की भावना एवं प्रेरक शक्ति और युद्ध कुशलता का सुंदर समन्वय हुआ है। वह उदार और संयमशील है। उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' में इस महत्वपूर्ण, वीरोचित एवं नारी सुलभ गुणों का समन्वय करते हुए यह महसूस करते हैं कि वह कहीं आदर्श से न गिर जाए। इसलिए वे अत्यंत हृदय विधारक परिस्थिति में उसे क्षण भर के लिए दुःखी और विचलित प्रदर्शित करते हैं और उसके चरित्र को मानवीय स्तर से ऊपर उठने नहीं देते। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में नायिका का सुंदर और सफल चित्रण हुआ है।

5.1. राष्ट्रीयता पर प्रकाश :

वर्माजी ने ऐतिहासिक मूल्यों का, मौलिकता से निर्धारण किया और नवोन्मेषी तत्वों का पूर्वाग्रह से विमुक्त कर उनका नव निर्माण कर उनमें नव प्राण संचार किया कि लक्ष्मीबाई का संघर्ष वैयक्तिक स्वातंत्र्य का सिंहनाद और प्रयास नहीं था, वरन् राष्ट्रीय चेतना की जागृति में पिसती स्वातंत्र्य भावना का दहकता अंगार था। ''सन् 1857 में देशव्यापी आंदोलन की संचालिका के रूप में लक्ष्मीबाई 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' उपन्यास में आती है। वह जीवन की कोमल भावनाओं, कलाओं एवं संस्कृतियों की रक्षा के लिए स्वाधिकार की रक्षा अनिवार्य समझती है और उसी अधिकार की रक्षा के लिए जीवन भर तलवार से प्यार करती है और भारतीय नारियों के हृदय में अतीत की एक दिव्य ज्योति भरती हुई त्याग और बलिदान से स्वातंत्र्य रक्षा का गीत लिख जाती है, जो युग–युग तक ग्रस्त और

निराश लोगों के पथ का सम्बल बनता रहेगा।''★ *(ऐतिहासिक उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा, रामदरश मिश्र, एस. चाँद एण्ड कंपनी, पृ. 34)*

इस उपन्यास में वर्माजी का कथा क्षेत्र एक प्रांत या प्रदेश की सीमा से आगे बढ़ राष्ट्रीयता की धरा पर आ पहुँचता है। लक्ष्मीबाई का संपूर्ण कार्यकलाप, संपूर्ण चिंतन समाजोन्मुख है। समाज, राष्ट्र तथा देश का हित ही जीवन का मूल ध्येय है। ऐसे व्यक्ति अपने विचारों और कार्यों से युग का प्रवर्तन करते हैं। ऐसे युग–प्रवर्तक देश के गौरव, नवीन विचारों का प्रतिष्ठापक होकर मानवता का दिशा निर्देशन करते हैं। जातीयता की संकीर्णता को मिटाने की आवश्यकता को और अन्तर्जातीय विवाह की सम्पन्नता को स्वीकार किया गया है। रानी देश की समग्र दशाओं और अँग्रेज़ों की कपटनीति समझती है। अतएव वह एक घोर नैराश्यग्रस्त वातावरण में कार्यारंभ करती है। इस दिशा का प्रमाण उसकी उदारता और राजनीति का चातुर्य ही है। देश के राजनीतिक, सामाजिक सभी क्षेत्रों की गतिविधियों से अवगत होकर वह जनहितार्थ प्रयत्नशील होती है। रानी हमेशा राजा को अँग्रेज़ों से सजग रखने के लिए व्यंग्य भी करती है, ''इन दिनों अब इससे अधिक और हो ही क्या सकता है? राज्य का काम चलाने के लिए दीवान हैं, डाकुओं का दमन करने और प्रजा को ठीक पथ पर चालू रखने के लिए अँग्रेज़ी सेना है। इस पर भी यदि कोई गलती हो गई तो कंपनी मनमाना चलता रहा।'' *(झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, श्री वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 62)* अपने देश के प्रति रानी के मन में अत्यधिक प्रेम है और वह प्रतिज्ञा करती है कि मैं केश मुंडन तभी कराऊँगी जब हिन्दुस्तान को स्वराज्य मिल जाएगा नहीं तो श्मशान में अग्निदेव मुण्डन करेंगे। जब अँग्रेज़ उनकी गोद को अस्वीकार कर, झाँसी को अपने आधिपत्य में लेने की घोषणा करते हैं, तब वह आवेश में आकर ऐलिस के सम्मुख कह उठती है कि मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगी। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई

का सम्मिलित रूप से हिन्दू और मुसलमान सैनिक संगठन और दोनों धर्मों के व्यक्तियों का हिन्दुस्तान पर न्योछावर होना भी गाँधीवादी भावना की पुष्टि करता है।

सामान्य जनता की शक्ति में रानी का अटूट विश्वास है। शिकार आदि के सिलसिले में उनका अनुभव यह हुआ कि जिन्हें हम अनपढ़ गँवार कहते हैं उनमें मानवता का दिव्य रूप छिपा रहता है। अपनी रचनाओं में इसलिए निम्नवर्ग के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति है। व्यक्तिगत जीवन में भी वर्माजी अपने साथियों को बड़े से बड़े आदमियों से ऊँचा मानते हैं। वर्माजी की सामान्य जनता के उच्च चरित्र में यह अड़िग आस्था 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' की झलकारी दुलैया, छोटी भंगिन, सुंदर–मुंदर, काशीबाई, गोसखाँ आदि के रूप में साकार हुई।

रानी लक्ष्मीबाई में राष्ट्रीयता का पूर्ण विकास प्रदर्शित किया गया है, जिसमें असंख्य नाना जैसे वीरों और लक्ष्मीबाई तथा मुंदर जैसी नारियों ने योगदान दिया था। रानी की वीरता, शौर्य, त्याग और राष्ट्र प्रेम का विश्व साहित्य के सम्मुख एक अन्यतम उदाहरण प्रस्तुत करता है। साधारण बालिकाएँ जैसे अपने भावी जीवन के प्रणय–प्रधान रोमांस भरे सपने देखा करती हैं वैसे अपने बालिका मनू कभी भी नहीं देखती। उसकी महत्वकांक्षा ऐसे सपनों को अपने पास तक नहीं फटकने देती। ऐसा प्रतीत होता है कि मनू या लक्ष्मीबाई ने प्रणय संबंध में कभी सोचा तक नहीं था। इसलिए चौदह वर्ष की मनू का जब चालीस वर्ष के गंगाधरराव के साथ विवाह हो जाता है तो अवस्था की यह विषमता उसके हृदय में तनिक–सा भी क्षोभ या विद्रोह की भावना उत्पन्न नहीं कर पाती; क्योंकि उसकी दृष्टि में यह विवाह अपनी महत्वकांक्षाओं की पूर्ति के लिए एक साधन मात्र था। इसलिए वह एक आदर्श पत्नी भी बनी रहती है और साथ ही अपनी महत्वकांक्षा देश की आज़ादी प्राप्त करने के प्रति निरंतर प्रयत्नशील बनी रहती है।

वर्माजी के कर्मठ पात्र कहीं भी धर्म के ढोंग पर विश्वास नहीं करते। रानी लक्ष्मीबाई युद्ध करके झाँसी की रक्षा करने में अपना सर्वस्व दाँव पर लगा देती है परंतु राव साहब ग्वालियर को जीतने के उपरांत नये मुकुट और सिंहासन की रक्षा के लिए ब्रह्म–भोज और दान का सहारा लेता है। वर्माजी ने इस प्रकार के धार्मिक ढोंग का सर्वत्र विरोध किया है।

लक्ष्मीबाई शौर्य और पूजा के साथ–साथ आध्यात्मिक वृत्ति रखती है। वह बचे हुए समय में धार्मिक ग्रंथों का नियमपूर्ण अध्ययन करती रहती है। भगवद्गीता पर उसकी परम आस्था थी। इसी धार्मिक वृत्ति का अन्त समय तक उसमें निर्वाह है – चाहे परिणाम अनुकूल या प्रतिकूल। वह धर्म के सच्चे मार्ग को पहचानने वाली नारी है। उसका पहला सिद्धान्त यह है कि सबल आत्मा का निवास सबल शरीर में ही संभव होता है। इसलिए प्रत्येक को, नर–नारी सभी को, सबसे पहले अपने शरीर को मजबूत और बलवान बनाना चाहिए; क्योंकि सबल शरीर ही आज़ादी की लड़ाई में भाग ले सकता है। वह कहती है – ''इन सब स्मृतियों का पोषक यह शरीर और उसके भीतर आत्मा है। उनको पुष्ट करो और प्रबल बनाओ।''★ *(झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, वृंदानवनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 76)* उसका दूसरा सिद्धांत गीता का निष्काम कर्मयोग अर्थात् प्रत्येक को अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए, उसका फलाफल भगवान के हाथ में है। वह अपने इन्हीं प्रमुख सिद्धांतों को लेकर जीवन संग्राम में आगे बढ़ती है और देश की आज़ादी के लिए लड़ती हुई बलिदान हो जाती है। लक्ष्मीबाई स्वतंत्रता संग्राम की क्रांतिकारी शक्ति और महारानी के रूप में जनता को प्रेरित करती है। उसमें वीरता, देशभक्ति, कर्मयोग की भावना एवं प्रेरक शक्ति और युद्ध कुशलता का सुंदर समन्वय हुआ है। वह स्वराज्य संग्राम में बहुत तीव्र होकर युद्ध करती है और इसी युद्ध में मर मिटती है।

6. 'मृगनयनी' में नायिका परिकल्पना और राष्ट्रीय भावना

मृगनयनी 'मृगनयनी' उपन्यास की प्रमुख नायिका है। उसके राई ग्राम के किसान बालिका के रूप से लेकर राजा मानसिंह की रानी बनकर ग्वालियर में जाने, राजा को कर्तव्य और कला के महत्व को समझाते हुए उन्हें उसी शिक्षा में प्रेरित करते और बड़ी रानी सुमनमोहिनी के पुत्र को ही राज्याधिकार के उत्तराधिकारी के रूप में घोषित करके, राजा को गरीबों की सेवा में लगाने तक की कथा इस उपन्यास की प्रधान कथा है। अन्य पात्र मृगनयनी के चारित्रिक विकास में सहायक हुए हैं। इन सभी लक्षणों के आधार पर कहा जा सकता है कि मृगनयनी प्रस्तुत उपन्यास की नायिका हो सकती है।

'मृगनयनी' उपन्यास में मृगनयनी के व्यक्तित्व तथा आदर्शों के द्वारा कला और कर्तव्य का समन्वय कराया है। नारी के विषय में वर्माजी की धारणा है कि नारी के बाह्य सौंदर्य के अतिरिक्त उसमें छिपा हुआ आंतरिक तेज को भी खोजना चाहिए। उनकी दृष्टि में पुरुष शक्ति है तो नारी प्रेरणा। नारी के इस रूप को मृगनयनी में प्रतिष्ठित किया गया है।

निन्नी (मृगनयनी) मातृ–पितृ विहीन एक निर्धन गूजर वंश की कन्या है। वह अटल की बहन लाखी की सहेली, राजा मानसिंह की पत्नी और राजसिंह और बालसिंह की माता है। निन्नी सुंदर रूपाकृति की है। उपन्यास में उसके सौन्दर्य की झाँकी वर्माजी ने बखूबी से दी है। निन्नी बलिष्ठ और पुष्ट काया की है। उसकी बड़ी–बड़ी आँखें भी हैं। लंबी–लंबी बरौनियों ने भौहों को छू लिया। आँखें इतनी बड़ी थीं कि उनको वास्तव में हिरण के छौने की आँख कहा जा सकता है। निन्नी में शौर्य और शारीरिक दृढ़ता है। एक तीर में जंगली सुअर, अरने व नाहर को मार गिराती है। आवश्यकता पड़ने पर, शत्रुओं से घिर जाने पर उन्हें अपने

तीरों और बर्छों से समाप्त कर सकुशल लौट आती है। वह तो मानसिंह के सम्मुख स्पष्ट शब्दों में कहती है – "पहले की सतियों ने आग और चिता को जितना प्यार किया उसके बराबर तीर और तलवार के साथ भी करना चाहिए था।"★ *(मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 231–232)* वह अपनी योग्यता से मानसिंह के मन को प्रभावित कर उसकी पत्नी बनती है।

स्वदेश के प्रति उसके मन में प्रेम है। उसकी इस भावना को उपन्यासकार उसी के मुँह कई बार प्रकट करवाते हैं। ग्वालियर के किले में राई को वह नहीं भूलती। मानसिंह को उसने कई बार अपने इस प्रकृति प्रेम से अवगत कराया है। वह अपने मन की चाह को प्रकट करते हुए कहती है कि चाँदनी में चमकती नदी की दमक को समेट कर आँचल में बाँध लूँ, खेत की ऊँघती हुई बालें और पहाड़ की ऊँचाई को एक ही ठौर पर इकट्ठा कर लूँ, बड़े–बड़े पेड़ों के बंदनवार बनाऊँ और डालियों, पत्तों के झरोखे सजाऊँ, उन झरोखे में होकर मोतियों के हार सी पहने हुए नदी की लहरों को गीत सुनाऊँ और फिर एक ऐसा घर बनाऊँ जिसमें यह सब आ जाए। वह विलास नहीं चाहती। सच्ची निष्ठा और प्रेम चाहनेवाली नारी है। इसलिए जब मानसिंह मुग्ध होकर उसे अपने महल ले चलने का प्रस्ताव उसके सामने रखते हैं तो वह पत्नी होकर जाने को तैयार हो जाती है, वासना की पूर्ति होकर नहीं। वह अपने समय का दुरुपयोग नहीं करती। विवाह के बाद अपने समय को संगीत, वीणा, चित्रकारी आदि में व्यतीत करती है। वह समय के महत्व को जानती है।

मृगनयनी में परिश्रम करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अपनी जीविका के लिए भाई के साथ दृढ़तापूर्वक खेत में कार्य करती है और आवश्यकतानुसार शिकार भी कर लाती है। उसी के परिश्रमी चरित्र का उदाहरण है कि अपनी पीठ पर मरे हुए भारी सुअर को उठाकर घर ले आती है। परिश्रम के बारे में रानी होने के बाद वह सखी से कहती है – "मुझको तो विजयजी की बात अच्छी लगती है।

वे कहते हैं सबको अपना–अपना आवश्यक काम अपने हाथ से ही करना चाहिए। वे स्वयं ऐसा ही करते हैं। उनका कहना है इस देश को भिखमंगे और निकम्मों ने डुबोया है।''★ *(मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 213)*

मृगनयनी में संयमशीलता है। नटिनी के आचरण से उसे स्वाभाविक खेद होता है। नटनी अंगों को बेशर्मी से नचाती–फिराती है। वस्त्र भी उस ढंग से पहनती है। जब उसका मानसिंह से मिलन होता है तब वे उससे शादी की याचना करते हैं। उस समय भी उसका संयमशील चरित्र, सलज्ज नारीत्व स्पष्ट हो जाता है। इसलिए मानसिंह स्पष्ट स्वीकार करता है कि तुम संयम से प्रेम को अचल बनाती हो और मैं अपने विकार से उसको चंचल कर देता हूँ। संयम के आधारवाला प्रेम ही आगे भी टिके रहने की समर्थता रखता है। उसमें दूसरों के प्रति समानता और सहृदयता रहती है। वह लाखी को भी अपने ही समान मानती है। रानी बन जाने के बाद उसमें अधिक सहृदयता आती है। वह लाखी के पैरों में चाँदी के गहने और अपने पैरों में सोने के गहने देखकर दुःखी होती है क्योंकि उसे इस तरह की असमानता अच्छी नहीं लगती। पंडित बोधन मिश्र के द्वारा लाखी और अटल के विवाह में रोड़ा अटकाये जाने पर भी उसकी हत्या का समाचार सुनने पर वह उसके प्रति हार्दिक दुःख और सहानुभूति प्रकट करती है।

मृगनयनी में नारीत्व की मर्यादा का भाव अत्यंत प्रबल रूप में रहता है। राजा मानसिंह उसके सौन्दर्य और शौर्य पर मुग्ध हो जाता है और निन्नी के सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है। उसको शंका होती है कि इस प्रस्ताव से कहीं उसके सम्मान को आघात न लगे। लेकिन निन्नी के मन को आघात लग ही जाता है और वह मानसिंह से धीमी आवाज़ में कहती है, ''गरीबों और बड़ों का जन्म–संग कैसा–बड़े लोग कहते कुछ और हैं, करते कुछ और हैं, ऐसा सुना है कथा–कहानियों में।''★★ *(मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 136)*

शादी के पश्चात् वह बहुत सहनशील नारी हो जाती है। सुमन–मोहिनी उसका अनादर करती है और कई बार उसे मार डालने के लिए विष का प्रयोग भी करती है। यहाँ तक कि एक बार उस पर चोरी का आरोप तक करती है। तब मृगनयनी सोचती है कि मैं तो न कहूँगी अपने को चोर। वह कहेगी तो सह लूँगी और वह निरंतर यही रूप प्रकट करती है। इन सभी को वह सहन कर लेती है और सुमनमोहिनी का पूर्ववत आदर करने लगती है। उसमें राष्ट्रीय चिंतन, देश और जनहित की प्रवृत्तियाँ हैं और इसी भावना से मृगनयनी बोलती है कि मैंने महाभारत में पढ़ा है कि देश की रक्षा शास्त्र द्वारा हो जाने पर ही शास्त्र का चिंतन हो सकता है। मेरा यही प्रयोजन है और कुछ नहीं। जब महाराज कला में लीन होकर कर्तव्य को भूलने लगते हैं तो मृगनयनी उन्हें कर्तव्य की ओर उन्मुख करती है। उस समय सिकंदर लोदी ग्वालियर पर आक्रमण की तैयारियाँ करने लगता है। ऐसी विषम परिस्थिति में राजा की उपेक्षामय दृष्टि उसे बहुत खलती है। वह राजा को कला और कर्तव्य का अलग–अलग महत्व समझाती है कि किसी एक के महत्व से राज्य का उत्थान नहीं होता, दोनों के सम्मिलित रूप में ही स्वस्थ शासन स्थापित कर सकते हैं। वह उपर्युक्त महत्व को इन शब्दों में प्रकट करती हुई कहती है, ''कला कर्तव्य को सजग किये रहे, भावना विवेक को संबल दिये रहे, मनोबल एक दूसरे का हाथ पकड़े रहे।''★ *(मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 279)* इस प्रकार वह मानसिंह को प्रेरणा देकर सजग करती है। मानसिंह वीरतापूर्वक शत्रुओं से टक्कर लेता है और ग्वालियर में आदर्श राज्य की स्थापना करता है।

मृगनयनी त्यागमयी भारतीय नारी है जो बलिदान में जीवन की सिद्धि स्वीकार करती है। वह अपने अहम और अभिमान को त्यागकर, विष का घूँट पीकर, अन्य रानियों का अपमान सहकर भी त्याग भाव नहीं छोड़ती। उसके त्याग

की चरम सीमा तो उस समय स्पष्ट हो जाती है जब वह अपने दोनों पुत्रों को राजगद्दी न दिलाकर सुमनमोहिनी के पुत्र को अधिकारी घोषित करने के लिए मानसिंह से निश्चल भाव से कहती है – ''राजसिंह और बालसिंह गद्दी या जागीर के अधिकारी नहीं होंगे। वे अपने बड़े भाई विक्रमादित्य की आज्ञा का पालन करते हुए केवल अपने कर्तव्य का निर्वाह करेंगे।''★ *(मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 319)* अगर वह चाहती तो राजगद्दी अपने पुत्रों को दिला सकती थी क्योंकि मानसिंह उसे ही अधिक मानता था।

मृगनयनी अनेक आदर्श गुणों तथा अपूर्व सौन्दर्य के साथ सरलता, ईमानदारी, त्याग भावना, कर्तव्य निष्ठा, संयम, सहनशीलता के साथ अपूर्व शारीरिक शक्ति, दृढ़ता, रुचि, परिष्कार, पति एवं स्वजनों के लिए स्वाभाविक स्नेह, कला मर्मज्ञता, कर्तव्य के प्रति निरंतर जागरूकता, देश, धर्म एवं जाति के कल्याण तथा अभ्युत्थान की ज्वलंत कामना आदि से संपन्न नारी है। ये सभी गुण एक साथ मिलकर उसे एक प्रभावशाली व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। वह नारी होकर अबला नहीं उमंगमयी शक्ति का रूप है। पति मानसिंह के प्रति उसका प्रेम, कर्तव्य से संयम और निर्मल है। मानसिंह उसके संयम, मर्यादित, निर्मल प्रेम की बहुत प्रशंसा करते हैं। स्त्री का गौरव, सौन्दर्य–महत्व स्थिरता में है, जैसे उस नदी का जो बरसात के मरमैला तेज प्रवाह के बाद शरद में नीले जलवाली, मन्थर, गतिगामिनी हो जाती है। दूर से बिल्कुल स्थिर और शांत, बहुत निकट से प्रगतिवाली। इसी प्रकार वृंदावनलाल वर्मा जी ने 'मृगनयनी' में कई उदात्त गुणों की प्रतिष्ठा करके उसे एक आदर्शमयी नायिका का रूप प्रदान किया है।

6.1. राष्ट्रीयता का अवलोकन

'मृगनयनी' उपन्यास की नायिका मृगनयनी बचपन से ही बड़ी पराक्रमी थी। वह जंगल में जाकर अरने, भैंस आदि का शिकार कर अपना पेट भरती है।

आवश्यकता पड़ने पर शत्रुओं से घिर जाने पर उन्हें अपने तीरों और बर्छों से समाप्त कर सकुशल लौट आती है। वह अपने पति राजा मानसिंह के सम्मुख स्पष्ट शब्दों में कहती है कि स्त्रियों को तीर और तलवार के साथ भी अधिक प्यार होना चाहिए।

वर्माजी इस 'मृगनयनी' उपन्यास में किसानों की निराशा और दयनीय स्थिति का बड़ा प्रभावोत्पादक चित्र उपस्थित करते हैं। 'मृगनयनी' का राई गाँव इसका प्रमाण है। पंडे–पुरोहित, सामाजिक रूढ़ियों जाति–पाँति, सामाजिक ऊँच–नीच आदि विकृतियों का समर्थन करते आये हैं क्योंकि इससे अनेक स्वार्थों की सिद्धि होती है। समाज के निम्न वर्ग सदैव इन रूढ़ियों के खिलाफ हमेशा विद्रोह करने के लिए सन्नद्ध हैं क्योंकि ये रूढ़ियाँ उसे सदैव सताती रहती हैं, कभी उसका कल्याण नहीं करती। अटल और लाखी दोनों भिन्न जाति के हैं। विद्रोह लाखी जैसी नारियों को ही बपौती है। वह अपने प्रेमी अटल से कहती है – "उतर पड़ो संसार में कमर कसकर और सिर उठाकर निंदाचार का सामना करो।"★ *(मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 195)* लाखी का यह स्वर भारतीय नारी का वह अजेय स्वर है जिसे सैकड़ों वर्षों के प्रयत्न के बाद भी सामन्त कुचल नहीं पाए, जिस धर्मशास्त्र के सैकड़ों पोथे अपने बोझ से दबा नहीं पाये। लाखी का स्वर इस बात का प्रमाण है कि भारतीय नारी अवसर मिलते ही सामन्ती बंधनों को पूरी तरह छिन्न–भिन्न कर डालेगी।

परिश्रम करने की उसमें स्वाभाविक प्रवृत्ति है। एक उदाहरण–होली की दिन भर की थकावट ने अटल को निश्चेष्ट कर दिया। खेत की रखवाली के लिए जाना था। वह अलसाये हुए मन को बहिन से नहीं छिपा पा रहा था। निन्नी ने कहा, "मैं जाती हूँ खेत के मचान पर, तुम घर पर सो जाओ। वाह! वाह! तुम

भी तो थक गई होगी? मैं तो नहीं थकी। खेत को रख लूँगी। चिन्ता मत करो।''★ *(मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 19)*

मृगनयनी में राष्ट्र चिंतन, देश और जनहित की प्रवृत्तियाँ हैं। जिस समय सिकंदर लोदी ग्वालियर पर आक्रमण करने की तैयारियाँ करता है उसी समय मृगनयनी राजा को अपने कर्तव्य के प्रति सजग करती है और मानसिंह वीरतापूर्वक शत्रुओं से टक्कर लेता है और ग्वालियर में आदर्श राज्य की स्थापना करता है। मृगनयनी देश, धर्म, जाति के कल्याण तथा अभ्युत्थान की कामना आदि से संपन्न नारी है।

7. आज की प्रासंगिकता में 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' एवं 'मृगनयनी' उपन्यासों में दृष्टिगत मानवीय मूल्यों का मूल्यांकन एवं अभिवृत्ति

वृंदावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' एवं 'मृगनयनी' उपन्यासों के अध्ययन के पश्चात् यह अवगत हुआ कि इन दोनों नायिकाओं के चरित्र में मानव मूल्यों की कई बातें दृष्टिगत होती हैं। 'लक्ष्मीबाई' एवं 'मृगनयनी' के चरित्र के द्वारा कड़ी मेहनत, साहस, निड़रता, प्रकृति प्रेम, दृढ़प्रतिज्ञा, स्वाभिमानता, मर्यादा, कर्मठता, कर्तव्य के प्रति जागरूकता, उदारता, अनवरत परिश्रम, त्याग, प्रेरणा, विवेकशीलता, सहनशीलता, व्यवहार कुशलता, सौहार्द्रता, आत्मविश्वास, संयम, सरलता, गंभीरता, वीरता, देशभक्ति तथा कर्मयोग की भावना, लगन, दृढ़ता, मानवता, बुद्धिमत्ता, प्रेरक–शक्ति, युद्ध कुशलता, जिज्ञासु, दूरदृष्टि, महत्वाकांक्षा, निर्भीकता, वाचालता, चपलता, निरभिमानता, व्यंग्यात्मकता, सरलता, उदारता, करुणा, आत्मबल, संयम, क्षणिक दुर्बलता, प्रेम, सैद्धान्तिकता, सूक्ष्मनिरीक्षणता, तेज, प्रबंध कौशल, नेतृत्व की भावना, कलाप्रेम, साहित्य प्रेम, सर्वधर्म समभावना, प्रजातंत्रीय दृष्टिकोण, निराशावादिता, रसिकता, सहिष्णुता,

मधुरता, होनहार, संकोच, स्वच्छंदता, सादगी, समानता, सहृदयता, मनुष्यता, चिंतन, क्षमता, आधुनिकता, इंद्रिय–नियंत्रण, परोपकार, परिस्थिति से समझौता करने की शक्ति, पतिव्रता, मातृत्व, सबसे बढ़कर आदर्श भारतीय नारीत्व जैसे मानवीय मूल्य की बातें पाठकों तक पहुँचती हैं जिसका अध्ययन व अनुपालन आज की पीढ़ी के लिए अत्यंत आवश्यक है।

लक्ष्मीबाई नारी की सर्वांगीण शक्ति की प्रतीक है। वह प्रेरणा दे सकती है और स्वयं जीवन–संग्राम में कूदकर पुरुषों को संचालित भी करती है। नारी का यह संस्करण अत्यंत प्रबल है। उसमें कर्तव्य–प्रेम और लगन है और प्रणय–व्यापार का सर्वथा अभाव। उसका स्नेहमयी, कर्तव्यपरायण पत्नी और माता के रूप में भी निर्वाह हुआ है।

लक्ष्मीबाई तेरह वर्ष की अल्पायु में उपन्यास में पदार्पण करती है। उसकी सहज बालप्रवृत्तियों के साथ–साथ उसमें अदम्य उत्साह का भान हो जाता है। वह अपने को हर क्षेत्र में प्रवीण रखना चाहती है। जैसे कि तुलसीदास की रामायण जैसे धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन के साथ–साथ तलवार चलाना, मलखंभ, घोड़े की सवारी जैसी बातों में कुशलता प्राप्त करना भी उसकी तीव्र इच्छा है। उसके स्वभाव में कुछ–कुछ उद्दण्डता–मिश्रित पराक्रमप्रियता है। अपने पुराने नाम 'छबीली' में वीरता, उग्रता का तनिक भी अंश न पाकर उससे घृणा करती है। उसे 'छबीली' संबोधन असह्य है। अपने दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करने वह कभी हिचकिचाती नहीं है। **उसका यह गुण आज के युवा वर्गों के लिए अत्यावश्यक है। शिक्षित एवं आधुनिक नारी होकर भी पूर्ण आज़ादी के इस वातावरण में आजकल के युवा वर्ग और नारियों में यह कमी नज़र आती है। लक्ष्मीबाई के चरित्र के द्वारा उनमें सुधार लाने की प्रेरणा मिलती है।**

मनू की चौदह वर्ष की आयु में उसका विवाह झाँसी के राजा गंगाधरराव से हो जाता है। उस अल्प वय में, नई जगह में, अपने को बहुत अच्छा संभालकर, अपने सभी आचार व अनुष्ठानों का नियमपूर्ण पालन कर अपने पति को, जो उससे आयु में बहुत बड़े और अनुभवी हैं, कर्तव्यों को भूलकर विलासिता में डूबते दीख जाते हैं तो वह अपनी व्यंग्यपूर्ण बातों से सजग करती है। लक्ष्मीबाई के ही शब्दों में – "आपके यहाँ के भाट क्या केवल प्रशंसा और यशगान ही करते हैं या कभी–कभी कड़खा भी सुनाते हैं? ... इन दिनों अब इससे (नाटकशाला के मनोरंजन) से अधिक और हो ही क्या सकता है? राज्य का काम चलाने के लिए दीवान हैं। डाकुओं का दमन करने और प्रजा को ठीक पथ पर चालू रखने के लिए अँग्रेज़ी सेना है ही। इस पर भी यदि कोई गलती हो गयी तो कम्पनी के एजेण्ट की खुशामद कर ली। सब काम ज्यों का त्यों मनमाना चलता रहा।"★ *(झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 60–62)* **उसके इस गुण से वर्तमान नारियों को शिक्षा मिलती है कि हम जिस वातावरण में भी रहे अपने नियम–अनुष्ठानों की बातों का पालन परमावश्यक है और अगर हममें दृढ़विचार हो तो हम किसी से कटुवचन न बोलकर उनको अपने कर्तव्यों का स्मरण दिला सकते हैं।**

गंगाधरराव की मृत्यु के बाद झाँसी अँग्रेज़ों ने हड़प ली। रानी को धक्का–सा लगा। मुँह से एकाएक निकल ही गया, "मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगी", परन्तु दूसरे क्षण उसने बुद्धि से कार्य लिया। सोचा, अभी समय नहीं आया है। अँग्रेज़ों के पाप का घड़ा अभी नहीं भरा। अभी सतत साधना की आवश्यकता है। इन बातों में लक्ष्मीबाई की बुद्धिमानी, सहिष्णुता, सही वातावरण की प्रतीक्षा आदि गुण व मूल्य देखे जाते हैं। **किसी भी बड़े लक्ष्य की सफलता के लिए, चाहे**

हम अपनी ओर से, संपूर्ण रूप से योग्य व हकदार ही क्यों न हो, उचित वातावरण के आगमन के लिए इंतज़ार करना ज़रूरी है। यह बात रानी के चरित्र से हमें देखने व सीखने को मिलती है।

रानी ने विद्रोही सिपाहियों द्वारा अँग्रेज़ों की हत्या पर उनकी नृशंसता की भर्त्सना की – "इन्हीं कर्मों से स्वराज्य और बादशाही स्थापित करोगे? तुम लोगों ने घोर दुष्कर्म किया है। क्या समझते हो कि संसार में सब नियम, संयम उठ गये?"★ *(झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 187)* वह जानती थी कि किसी भी शासन की स्थापना में स्वस्थ परंपराओं की रक्षा आवश्यक है, क्षणिक आवेश तथा अनुशासनहीन क्रांति से कुछ न होगा। **इससे उसकी न्यायप्रियता, संयम, सहज मानवीय भावनाओं पर नियंत्रण आदि मूल्य की बातें देखी जाती है। इसका पालन आज की स्थिति में हरएक को परमावश्यक है।**

हम लक्ष्मीबाई के सम्पूर्ण जीवन पर दृष्टि डालकर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनका चरित्र भगवान कृष्ण के उपदेश 'कर्मयोग' पर आधारित है। उपन्यास में पदार्पण करते ही वह कुछ कर मिटने की धुन में है। आदर्श पुरुषों व नारियों की कथाएँ उसके हृदय में रमी हैं। झाँसी पहुँचकर वह अपने स्वप्निल संसार को यथार्थ रूप प्रदान करना चाहती है और सफल भी होती है। झाँसी में स्थापित किया गया, उस समय का शासन आज के वैज्ञानिक युग में भी आदर्श और प्रेरणा की वस्तु है। अँग्रेज़ों से मुकाबला होने पर रानी ने साहस न छोड़ा। अल्प साधनों को लेकर वह स्वराज्य की रक्षा हेतु जुट गई। उस घोर युद्ध में सैनिक गये, झाँसी गई, रानी गई, सब कुछ गया। परंतु वह अपनी साधना से अन्त तक तनिक भी न डिगी।

लक्ष्मीबाई का चरित्र आदर्श है। फिर भी अत्यंत हृदय विदारक परिस्थितियों में क्षण भर के लिए नारी सुलभ बलहीन व गम उसमें देखा जाता है। मगर तुरंत ही वह अपने को उन दुखपूर्ण स्थितियों से ऊपर उठाने में समर्थ हो जाती है। उदाहरण के लिए अपने पति गंगाधरराव की मृत्यु, झाँसी को अँग्रेज़ों द्वारा हड़पने, युद्ध में हार जाने के क्षणों में रानी विचलित होती है और सिसकती है। उनकी आँखों के सामने साधन–पथ–कुछ धुँधला हो उठता है। परंतु दूसरे क्षण ही वह संभलती है, नयी स्फूर्ति और नई चेतना के साथ उठकर खड़ी हो जाती है। लेखक ने लिखा है – ''यदि अकेले ही स्वराज्य की लड़ाई लड़नी पड़े तो लड़ी जाएगी। वह रानी का अटल निश्चय था और उनका अचल विश्वास था कि एक युद्ध और एक जन्म से ही कार्य पूरी तौर पर सम्पन्न नहीं होता। 'संभवामि युगे–युगे', उन्होंने पढ़ा था, उनको याद था और कण–कण में व्याप्त था।''

वे अपने युग के उपकरण और साधन काम में लाती थीं। जिस समाज में उनका जन्म हुआ था, उसी में होकर उनको को काम करता था, परंतु उस समाज की हथकड़ियों और बेड़ियों की उन्होंने पूजा नहीं की। वे अपने युग से आगे निकल गई थीं, किन्तु उन्होंने अपने युग और समाज को साथ ले चलने का भरसक प्रयत्न किया। झाँसी में विशेषता और विंध्यखंड में साधारणतया स्त्री की अपेक्षाकृत स्वतंत्रता और नारीत्व की स्वस्थता 'लक्ष्मीबाई' के नाम के साथ बहुत संबंद्ध है। लक्ष्मीबाई का यह विश्लेषण वर्तमान युग को प्रेरित करने की दृष्टि से किया गया है। एक पेड़ के नीचे पत्थर पर बैठकर सोचने लगी। झाँसी का सर्वनाश होने को है। स्वराज्य की स्थापना अभी दूर है। ''परंतु कर्म करने मात्र का अधिकार है फल से हमको क्या?''★ *(झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 116)* यहाँ गीता का 'कर्मयोग' संबंधी उपदेश ज्यों का

त्यों अंकित है। अन्त में विपक्षी अँग्रेज़ों के सेनापति रोज़ ने भी स्वीकार किया, 'यह थी उनमें सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्कृष्ट वीर' निस्संदेह लक्ष्मीबाई का इतिहास प्रसिद्ध अमर चरित्र बहुतों को प्रेरणा देता है। वर्माजी ने उसके अस्पष्ट इतिहास प्रसिद्ध चित्र में मानवोचित रंगों को भरकर उसे दिव्य रूप प्रदान किया है।

इस प्रकार लक्ष्मीबाई के चरित्र के द्वारा देखा जाता है कि उसके आचरण व गुण की प्रशंसा उसके घोर दुश्मन के द्वारा भी की गयी है। या यों कह सकते हैं कि दुश्मनों के द्वारा भी प्रशंसा योग्य उसका चरित्र रहा है। इस बात को आज के युवा वर्गों को, नारियों को ज़रूर पालन करना है। गुण होने पर दुश्मन भी तारीफ करते हैं।

अनवरत परिश्रम करने की प्रेरणा लक्ष्मीबाई के शब्दों में – ''सीढ़ी के डंडे पर पैर रखते ही हम छत पर नहीं पहुँच जाते। एक ही त्याग, एक ही मरण, एक ही जन्म से स्वराज्य नहीं मिलता है। (वही, पृ. 220) अर्थात् अनवरत प्रयास, परिश्रम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अत्यावश्यक है। एक ही प्रयास में सफलता की कामना में सदैव कामयाब नहीं हो सकते। स्थाई कामयाबी के लिए धीरता के साथ काम करना है। **इस तरह कहा जा सकता है कि 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' उपन्यास अनगिनत व असंख्य मानव मूल्यों की बातों का भरमार है जिसका पठन व पालन आज की स्थिति के लिए अत्यावश्यक है।**

'मृगनयनी' उपन्यास में 'मृगनयनी' कर्तव्य तथा कला को जीवन के दो आवश्यक पहलू समझती है। वह गूजर जाति की होनहार युवती है। उसके जीवन में जातिभेद की समस्या आती है। एक साधारण कृषि बालिका, ग्रामीण अनपढ़ नारी होते हुए भी सभी कलाओं का ज्ञान पाने वह अति जिज्ञासु एवं उत्सुक

देखी जाती है। नट वर्गों से कई कीमती एवं बहुमूल्य चीज़ों द्वारा प्रलोभन दिये जाने पर भी वह दिल से संयमित और सुदृढ़ रहती है। उनके ललचाहट में नहीं आती है। अपनी सखी लाखी को जान से प्यार करती है और उस मित्रता में समानता को रानी बनने के बाद भी निभाती है। भविष्य में मानसिंह की रानी बनने के बाद जब कलाएँ सीखने के सुअवसर प्राप्त होते हैं तब अपने को सभी क्षेत्रों में सुयोग्य बनाने हेतु अथक प्रयास करती रहती है और उसमें सफल भी होती है। इसी तरह वर्तमान समाज की नारियों को 'मृगनयनी' पात्र के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि हमें सुअवसरों का लाभ उठाना चाहिए।

निन्नी (मृगनयनी) अपने ग्राम्य जीवन की अबोधप्राय अवस्था में भी नारी की पुरुष सापेक्ष मर्यादा भावना से भली–भाँति परिचित है। राजा मानसिंह के विवाह के प्रस्ताव पर वह सतर्क हो जाती है। उसे आशंका है कि कहीं भविष्य में सम्मान न खोना पड़े। वह जानती है कि संयम और गम्भीरता द्वारा ही नारी पुरुष के मानसिंह जैसे सर्वाधिकार व धन प्राप्त पुरुष के हृदय में अक्षुण्ण अधिकार रख सकती है। उसे मानसिंह का प्रेमालाप और चेष्टाएँ भाती हैं किन्तु नारीत्व की मर्यादा को अक्षय बनाये रखने के लिए वह इंद्रिय नियंत्रण की इच्छुक है।

नारी पुरुष की प्रेरणा है, पुरुष को सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करना उसका कर्तव्य है और यह सर्वमान्य बात है कि हर पुरुष की सफलता के पीछे एक स्त्री का हाथ सदैव है, मृगनयनी यह भूलती नहीं। मानसिंह, मृगनयनी के ग्वालियर आने पर मनोरंजन और कला–प्रेम की ओर अधिक झुक जाता है। मृगनयनी उसे सजग कर उसमें नवीन चेतना भर देती है।

मृगनयनी, राजमहल में अन्य रानियों के साथ विशेषकर सुमनमोहिनी के साथ सहज वातावरण बनाये रखने सदैव प्रयत्न करती है। उदाहरणार्थ सुमनमोहिनी

द्वारा उत्तराधिकारी की समस्या ग्वालियर में प्रबल रूप धारण कर रही थी। राजा मानसिंह रानी मृगनयनी की संतान को ही अधिकार देने के पक्ष में थे मगर सबसे बड़ी रानी सुमनमोहिनी अपने बेटे को ही राज्य का उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी। यथावसर मृगनयनी स्वयं ही इस समस्या का समाधान निकालती है। वह एक पत्र के द्वारा मानसिंह को बताती है कि साम्राज्य का अधिपति विक्रमादित्य होगा और उसकी दोनों संतानें अग्रज की आज्ञा का पालन करेंगी। पत्र की एक प्रतिलिपि वह रानी सुमनमोहिनी को भी भेज देती है।

इस तरह 'मृगनयनी' उपन्यास में 'मृगनयनी' चरित्र के द्वारा चंचलता, सजीवता, अलहड़ता, कर्मठता, क्रांतिकारिता, शक्तिमत्ता, कर्तव्य–सजगता, संयम, क्षमा, उदारता, सत्संगति का पालन, विनम्रता, व्यवहार कुशलता आदि मानव मूल्य की बहुमूल्य बातें देखने को मिलती हैं। **वर्तमान नारियों व युवा वर्गों में इन गुणों एवं मूल्यों का पालन अनिवार्य है। समाज के सभी नारियों और युवा वर्गों को, इन मूल्यों की अभिवृत्ति के लिए इन उपन्यास की दोनों नायिकाएँ प्रेरित करती हैं। इन मूल्यों के पालन से इन उपन्यासों की अहं भूमिका की नींव सदैव सुदृढ़ रहती आयी है। इसीलिए ही आज इस आधुनिक युग में भी ये उपन्यास धारावाहिक के रूप में दूरदर्शन में प्रसारित हो रहे हैं।**

'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' एवं 'मृगनयनी' उपन्यास राष्ट्रीय भावना की प्रेरणा से लिखे गये हैं। इन दोनों उपन्यासों में जनसाधारण के महत्व की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है। नारी स्वातंत्र्य वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों की एक अनन्य विशेषता है। इनके उपन्यासों में नारी पात्रों की सृष्टि भव्य और उदात्त बन पड़ी है। विशेषकर झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, मृगनयनी, लाखी इनके अमर

पात्र हैं जो देश और कर्तव्य के लिए साहस, शौर्य, त्याग, तपस्या तथा आत्मोत्सर्ग करने के लिए सदैव अविस्मरणीय होंगे। नारियों के प्रति वर्माजी का दृष्टिकोण पवित्र और आस्थावान है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, मृगनयनी आदि नायिकाएँ मानव–जीवन को एक संदेश देती हैं और कर्तव्य–अकर्तव्य का बोध करती हुई प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान करती हैं।